।। श्रीश्रीराधामदनमोहनौ जयतः ।।

• जय गौर •

श्रीमच्छ्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत

श्रीमद्भागवत महापुराणान्तर्गत

वैष्णवविधान

(साधन-पद्धति-निर्देशिका)



– गो. नित्यानन्द भट्ट

॥ श्रीश्रीराधामदनमोहनौ जयतः॥

• जय गौर •

श्रीमच्छ्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास–प्रणीत
श्रीमद्भागवत–महापुराणान्तर्गत

वैष्णवावधान

साधन–पद्धति–निर्देशिका

परिशोधित एवं परिवर्धित
द्वितीय – संस्करण

लेखक
श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वर–सम्प्रदाय–वैष्णवाचार्य
गो० श्रीनित्यानन्दजी भट्ट
(भागवत–भूषण, भक्ति–विशारद)

विषय सूची

समर्पणपत्रम्

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

अज्ञान अन्धकार से अन्ध हुई जीवकी चक्षुओंको
जिन्होंने ज्ञानरूपी अमृताञ्जन-शलाका से उन्मीलित किया
'उन श्रीगुरुदेव श्रीमाध्वगौड़ेश्वरवैष्णवाचार्य, कलियुग-पावनावतार
श्रीकृष्णचैतन्यदेव के छः गोस्वामियों के मध्य श्रीरघुनाथभट्ट-परिवार,
श्रीगदाधरपण्डित-परम्परावर्ती एवं श्रीजीव-गोस्वामी-शिष्य,
श्रीगोविन्दसेवी, श्रीराधामदनमोहनदेव-प्राकट्यकारी
श्रीगदाधरभट्ट गोस्वामी-नादपरम्परा गद्यस्थ,
श्रीश्री १०८ के नित्यलीलाप्राप्तमञ्जरीस्वरूप निजगुरुदेव परमपूज्यपाद
"श्रीगोवर्द्धन भट्ट जी महाराज"
के श्रीहस्त कमलों में यह श्रीमद्भागवतान्तर्गत "वैष्णवावधान"
ग्रन्थरत्न सादर समर्पित है।
उन्हीं की हृद्गत प्रेरणा से इस ग्रन्थ को संकलित करने का
साहस किया गया है।

श्रीजीव गोस्वामि आविर्भावोत्सव — **—नित्यानन्द भट्ट**
पौषशुक्ल 3, सं. 2023 वि. — श्रीधाम वृन्दावन



ग्रन्थ-लेखक

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय वैष्णवाचार्य गोस्वामी
श्री १०८ नित्यानन्दभट्ट जी महाराज

पुराणभूषण - भक्तिविशारद

का

परिचय

(लेखक : बालकृष्णदास खेमका)

हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्तितोऽहं वराकरूपोऽपि
तस्य हरेः पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य।

श्रीरूपगोस्वामिपादाः

मूक होय वाचाल पंगु चढ़ै गिरवर गहन।

श्रीगोस्वामी जी के उक्त वचन हमारे संकलनकर्त्ता पर अक्षरशः लागू होते हैं—

प्रस्तुत ग्रन्थ के ग्रन्थकार परमपूज्य श्रीनित्यानन्द-भट्टजी का जन्म प्रातः स्मरणीय पुराणभूषण भक्ति-विशारद श्रीमधुसूदन भट्टजी के यहाँ विक्रम संवत्सर 1967 फाल्गुन कृष्णा-चतुर्दशी श्रीवैष्णवाचार्य भगवान् शिव की (विवाह) तिथि को हुआ। इनके पूर्वज दक्षिणदेशीय आँध्रप्रान्त के कृष्णावेणी तट पर हनुमानपुर के निवासी 'श्रीगदाधर भट्ट' नाम से प्रसिद्ध थे। वे श्रीकलियुग-पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्यदेव के छः गोस्वामियों के मध्य श्रीरघुनाथ भट्ट परिवार श्रीगदाधर पण्डित परम्परावर्तीय श्रीजीवगोस्वामीपाद के शिष्य थे। आप विरक्त होकर श्रीव्रजवास की उत्कट उत्कण्ठावश श्रीजीव-गोस्वामिपाद के शिष्य हुए। यह उस समय की बात है जब 'श्रीगोविन्ददेव जी' का लाल पत्थर का मन्दिर बनाया ही गया था। श्रीरघुनाथभट्टजी महाराज की आज्ञा से जयपुर के राजा द्वारा यह मन्दिर निर्मित हुआ था। और वहाँ श्रीगोविन्ददेव श्रीवृन्दावन में विराजमान थे। जब श्रीगदाधर भट्टजी वृन्दावन आगये भट्टजी का परिवार भी अन्वेषण करता हुआ तब श्रीवृन्दावनधाम में आ गया। उस समय वे करङ्क कन्थाधारी विरक्त वैष्णव हो गये थे। इन्होंने परिवार के लोगों से कहा कि हमारा आप सबसे अब कोई दैहिक सम्बन्ध नहीं रहा। यह सुन सब बन्धु बोले-भगवन्! आत्म-सम्बन्ध तो है ही, क्योंकि आप भी श्रीगोविन्ददेव के सेवक हैं और हम सब भी। आप विरक्त होकर सेवा करिये, हम गार्हस्थधर्म पालन करते हुए सेवा करेंगे।"

तब इन्होंने आज्ञा दी कि हमारा इष्ट तो श्रीमद्भागवती संहिता है। क्योंकि श्रीपाद रघुनाथभट्टजी को श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीमद्भागवतमहापुराण दान की थी। श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी प्रभु श्रीपुरीधाम में श्रीचैतन्यदेव को श्रीमद्भागवत सुनाया करते थे। अत: आप सब यहाँ के प्रधान मन्दिरों में कृष्ण कथा सुनाकर अमृतान्न से अपना निर्वाह करें।

तभी से यह वंश अमृतवृत्ति पर निर्भर रहा। यहाँ के जमीदार श्रीरामरूप कटारे हुए हैं। इन्होंने इन लोगों की प्रतिभा देखकर जमीन भी दी। यह पांच सौ वर्ष से यहाँ के निवासी हैं।

गौड़ीयवैष्णव होने से श्रीपाद निताईचाँद की कृपा के बिना श्रीमन्महाप्रभु की कृपा नहीं होती है। इसलिए इस ग्रन्थ के संकलनकर्ता का नाम 'नित्यानन्द' रखा गया गया। श्रीगोविन्ददेव के बड़े भाई श्रीबलदेव जी की मान्यता से यह बड़े दिनों में जन्मे थे, अतएव माता-पिता के लाड़ले पुत्र थे। अत: अति चंचल थे।

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे कीडतो याति विशंति।

यह श्रीमद्भागवती संहिता का वचन इनमें चरितार्थ था। जब विक्रम संवत्सर 1981 में श्रीमहाराज मधुसूदनभट्टजी कलकत्ता नगर में जयलाल हरगुलाल जी के यहाँ 21 नं. बड़तल्ला गद्दी में श्रीमद्भागवत कथन के निमित्त पधारे थे, तब इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ ही था। नित्य हवन संध्यादि करना तथा बाल्य-चाञ्चल्योत्थ उपद्रव करना इनका स्वाभाविक कार्य था। तब ही हम लोग इनके पिताश्री से दीक्षित हुए थे। दूसरी बार महाराज जब सन् 24 में कलकत्ता सामलिया जी के मन्दिर में कथा कह रहे थे, यह मातु:श्री के ही पास श्रीवृन्दावन में रहे। उस काल में इनकी अवस्था 11 साल की थी।

इनकी माता नित्य प्रति आह्निक कराकर प्रदीपधर भोग रखकर एक पृष्ठ श्रीमद्भागवती संहिता के श्लोक इनके द्वारा सुनकर इन्हें बालभोग का प्रसाद देती थीं। शनैः शनैः यह अब पाठ करना सीखने लगे "मातृदेवोभव, पितृदेवोभव"—इस भगवद् आज्ञानुसार जब पिताश्री प्रदेश यात्रा में जाते तब नित्यानी मन्दिरों में पाठ भी करना प्रारम्भ कर दिया।

सर्वप्रथम पिताश्री ने इन्हें लम्बीपोली वाले अपने बड़े पूर्वजों के घर से श्रीगोवर्द्धनलालजी भट्टजी महाराज से दीक्षित कराकर इन्हें "आचार्यवान् भव"-इस भगवद् आज्ञानुसार श्रीकानपुर वाले पण्डित जी महाराज श्रीदुलारे-प्रसाद जी से व्याकरण की शिक्षा "लघु कौमुदी" का आरम्भ कराया।

मध्य में ही इनकी मातु:श्री का देहान्त हो गया। अत: कुटुम्ब पोषण का सब भार इन पिता पुत्र पर ही आ गया।

सर्वप्रथम इन्होंने विक्रम सम्वत्सर 1985 में श्रीबल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी श्रीब्रजपाललालजी मथुरा वाले महाराज द्वारा आयोजित श्रीयमुना जी के छप्पन्न भोग महोत्सव में 108 श्रीमद्भागवत सप्ताह अनुष्ठान में श्रीपिताश्री के निमन्त्रणपत्र में सप्ताह पाठ किया। यह प्रात:काल की गाड़ी से सब बन्धुओं के सहित मथुरा जाते और सायं 4 तक पाठ समाप्त कर आते।

बाद में– **प्राप्ते तु शोडषे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।** इस नीति के अनुसार शनै:-शनै: पठन-पाठन में इन्हें अग्रसर किया गया। कुछ दिन श्रीराधावल्लभ पाठशाला में श्रीगर्गजी महाराज से भी पढ़े। श्रीबिहारी जी के बगीचा की पाठशाला में पण्डित श्रीरामप्रसाद जी महाराज से पढ़ पण्डित श्रीमथुराप्रसाद जी की कृपा से प्रथम परीक्षा पास कर इन्होंने प्रथम खण्ड दिया ही था कि विक्रम सम्वत्सर 1987 चैत्र शुक्ल 11 को इनके पिताश्री निकुञ्जधाम को पधार गये।

अब कुटुम्ब पोषण का सब भार इन पर ही आ गया। इनकी भूआ ने इनका विवाह मथुरा निवासी श्रीउपाध्याय गोविन्द जी भट्ट की कन्या कृष्णादेवी से करा दिया। कुछ दिनों पूर्व ही नूतनमन्दिर का निर्माण श्रीपिताश्री ने कराया था। उसकी प्रतिष्ठा इन्होंने ही करायी। हम लोग भी कलकत्ता से ब्रजवास की उत्कट इच्छा लेकर श्रीवृन्दावनवास निमित्त श्रीगुरुदेव के निवास स्थान पर आ बसे।

जब यह कथा निमित्त धूरियावाली कुंज में जाते थे तब माँ गुशाइन 'पुरातन पिताश्री के श्रोतागण' इन्हें अङ्क में बैठाकर आश्वासन देकर इनके द्वारा कथा श्रवण करते थे। इसी प्रकार जब श्रीरूपगोस्वामिपाद श्रीजीव गोस्वामिपाद के निवासस्थल श्रीराधादामोदर मन्दिर में जब कथा निमित्त जाते थे तब द्वार पर पैर रखने पर कांपते थे। शनै: शनै: सब सन्तों ने एवं प्राचीन श्रीमहाराज के श्रोताओं ने इन पर कृपा की।

मुख्यकृपा तो 'श्रीमहाराज की इन पर हुई। लीला प्रवेशकाल में उन्होंने जो कृपा-हस्त इनके सिर पर धरा, उस कृपावलम्बन से इनकी भय-भावना धीरे-धीरे दूर हो गयी।

"आचार्यवान्भव"–यह भगवद् आज्ञा इनके दीक्षागुरु श्रीछुट्टनलाल भट्टजी महाराज की कृपा से इन्हें फलीभूत हुई इन्होंने आनुपूर्वी रूप में श्रीमद्भागवत श्रीगुरुमुख द्वारा पढ़ा।

हम शिष्योंके चित्त में प्रेरणा हुई कि इनके द्वारा ही श्रीमद्भागवत सप्ताह का श्रवण किया जाय। अत: कथा निमित्त इन्हें बैठा दिया गया। कुछ यह कहते थे बाकी इनके फुफेरे भाई श्रीश्रीनिवास गोस्वामी जी कहते थे। जब यह कथा कहते ऐसा जाना जाता था कि श्रीमहाराज जी ही इनमें प्रविष्ट होकर कृष्ण-कथा कह रहे हों!

उन्हीं दिनों दाऊजी बगीचा वाले पण्डित बाबा श्रीरामकृष्णदास जी भी श्रीधाम वृन्दावन में विराजमान थे। एक दिन उन्होंने कहा- निताई! तू हमें कथा नहीं सुनावेगा।

इन्होंने कहा–"बाबा हम पै कहा आवै?"

पण्डित बाबा ने आशीर्वाद दिया–"नहीं तुम खूब कहोगे।"

धीरे-धीरे सब सन्तों में प्रसिद्धि होने लगी। श्रीसेठ हरगुलाल जी के चाचा ने श्रीबिहारी जी के बगीचा में उत्सव किया था। उसमें श्रीमद्भागवत-सप्ताह निमित्त इन्हें बिठलाया गया। उन दिनों श्रीअमोलकराम जी शास्त्री विराज रहे थे। प्रवचन सुन श्रीजी के मन्दिर के सामने उन्होंने हृदय से लगाया और आशीर्वाद दिया कि तुम तो सिद्ध हो गये। श्रीबिहारी जी महाराज के बगीचे में उन दिनों श्रीबाबा प्रियाशरणदासजी विराजमान थे। उन्होंने कथा सुन यह कहा कि–

"भाई अभी ऐसा मालूम पड़ता है, जाने बड़ा भार मस्तक पर धरा है, उसे उतारना है। धीरे-धीरे सब सहज हो जायेगा।"

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज एवं श्रीहरि बाबा ने कुछ दिनों अपने स्थान पर इनसे कथा सुनी। श्रीउड़िया बाबा ने आशीर्वाद दिया कि तुम अपने रास्ते पर हो।

एक बार बम्बई वालों की कोठी पर 108 सप्ताह हुई। वहाँ निर्णय हुआ, इनसे ही कथा सुनी जाये। प्रवचन के बाद लक्ष्मणजी चौबे ने कहा– "प्रभु करें आप कण्ठस्थ ही कथा कहने लगें।"

दूसरी बार राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य श्रीमधुसूदन वल्लभजी के निकुञ्ज महोत्सव में 151 श्रीमद्भागवत सप्ताह पाठ हुये। वहाँ श्रीहरि-गुरु-ब्राह्मण-वैष्णवों की कृपावश प्रथम बार कण्ठस्थ ही सप्ताह प्रवचन किया।

सर्वप्रथम प्रयाग तीर्थ में वीतराग श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी ने एक मास दशम स्कन्ध की कथा के लिए बुलाया। उससमय वे हंसतीर्थ पर वटवृक्ष के नीचे विराजते थे। उसके बाद वहीं पर अर्द्धकुम्भी पर अष्टोत्तरशत कथा हुयी। प्रधान प्रवचनकर्त्ता यही रहे।

फिर तो ऐसा आस्वादन आया; पुरानी झूसी आश्रम के उद्घाटन में, श्रीमालवीयजी के प्रयागउत्सव में अनेक बार, बीस वर्षों से निरंतर अब भी चैत्र के नवसत्वत्सर उत्सवों में श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज इनका स्मरण करते रहते हैं।

श्रीमद्वल्लभसम्प्रदाय के वैष्णवमण्डल ने श्रीगोवर्द्धन की तरहटी में श्रीविट्ठलनाथ जी महाराज के आधिपत्य में, अधिकमास 2007 जुलाई 6 आषाढ़ कृष्ण 7 में एक बृहत् 'एक सहस्र आठ का' श्रीमद्भागवत सप्ताह का बृहत् आयोजन आरम्भ किया। इसमें एक गुजराती विभाग के बड़ोदा निवासी श्रीबद्रीनाथ शास्त्री प्रधान व्यास नियुक्त किये गये। जबकि हिन्दी विभाग में ये प्रधान व्यास रहे। द्वितीय बार अधिक मास में श्रीनाथद्वाराधिपति श्रीतिलकायत श्रीगोविन्दलाल जी महाराज ने श्रीगोवर्द्धनधरण के सान्निध्य में श्रीरमाकान्त मालवीय जी के आधिपत्य में अष्टोत्तरशत श्रीमद्भागवत जी का सप्ताह यज्ञ कराया उसमें प्रवचन निमित्त प्रधानव्यास यही निर्वाचित हुए।

एक बार श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी के चित्त में बद्रीनाथ-यात्रा की उत्कण्ठा हुई। सपरिवार इन्हें साथ ले गये। श्रीविशाला नगरी में बद्रीनाथ मन्दिर में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त चार दिन में श्रीमद्भागवत पाठ किया। इनके साथ इनके श्वसुर श्रीगोविन्दजी उपाध्याय भी शामिल थे।

एक दिन दर्शनकाल में ब्रह्मचारी जी ने देखा पूछा कि यह क्या हो रहा है? दोनों व्यक्तियों ने उत्तर दिया—

नारायणं नमस्कृत्य

उत्तर में ब्रह्मचारी जी कहते हैं कि क्या—

"**देवीं सरस्वतीम् व्यास**" नहीं होगा? फिर क्या था "व्यास आश्रम" पर सप्ताह अनुष्ठान की तैयारी होने लगी। सरस्वती अलकनन्दा सङ्गम पर

डेरा लगे। ग्यारह व्यक्ति अनुष्ठान में शामिल हुए जिसमें द्वितीय आवृत्ति "ब्रह्म प्रयाग" पर अष्टोत्तरशत सप्ताह कर रहे श्रीवैष्णव संन्यासी धनुर्धराचार्य जी भी शामिल थे। एक अद्वैत सम्प्रदाय के संन्यासी अवधूत थे, साथ ही अनुष्ठान में श्रीब्रह्मचारी जी भी। वह अभूतपूर्व आनन्द रहा।

प्रात: 7 बजे से एक स्वर में सभी ग्यारह व्यक्तियों का पाठ प्रारम्भ होता, दो बजे अनुष्ठान समाप्त होता। श्रीबद्रीनाथमन्दिर से खिचड़ी प्रसाद आता, समष्टि में बटता। फिर कानपुर वाले पण्डित 'भागवत चरित्र' गान में कहते। एक-एक 'आह' के प्रसङ्ग में एक चरित्र प्रवचन एक-एक दिन कोई एक विद्वान करते। फिर धनुर्धराचार्य जी का प्रवचन होता। गोविन्दजी उपाध्याय के मधुर कीर्तन के बाद समष्टि कीर्तन—इस प्रकार दस दिन मानो दिव्य लोक में ही व्यतीत हुए।

एकबार सहस्रधारा पर भी सप्ताह हुआ। उसमें श्रीहरिबाबाजी महाराज भी शामिल थे। दूसरे कुम्भपर आरा निवासी कालीकमलीवाले मौनीबाबा भी उपस्थित थे। इनकी इच्छा हुई अष्टोत्तरशत श्रीमद्भागवत का अनुष्ठान करें। आपने इनको आरानगर में बुलवाया। दूसरी बार ग्राम में अठारह पुराण का अनुष्ठान कराया। वहाँ पर भी इन्हीं के द्वारा कथा हुई। दो बार टाटा नगर भी मौनीबाबा के आग्रह पर जाना पड़ा। इस प्रसंग में श्रीगयाधाम एवं श्रीजगदीश धाम की यात्रा हुई।

चतु:सम्प्रदाय के महन्त श्रीरासविहारीदास जी के आग्रह पर गुजरात मालसर सप्ताह निमित्त जाना पड़ा। द्वितीय बार इन्हीं के आग्रह पर उड़पीकृष्ण तक की दक्षिण यात्रा की गयी। तृतीय बार महन्त जी महाराज के आग्रह पर श्रीगोवर्द्धन क्षेत्र की सप्तकोश की 22 दिन की दण्डवती परिक्रमा हुई। इसमें सायंकाल नित्य प्रवचन होता।

वनविहार के महन्त श्रीमाधुरीशरण बाबाजी के आग्रह पर श्रीगोवर्द्धन की तरहटी में सात दिन सात स्थानों पर इनके द्वारा सप्ताह प्रवचन हुआ। साथ में रास मण्डली द्वारा अभिनय होता था।

श्रीगौरीशंकर जी गोयनका के आग्रह पर कलकत्ता धुसड़ीमिल पर तुलाराम जी द्वारा कराये गये गायत्री अनुष्ठान में गये। लौटते वक्त बनारस में अस्सीघाट पर गोयनकाजी ने श्रीमद्भागवत का सप्ताह कराया।

श्रीआनन्दमयी माताजी के आग्रह पर भागवत जयन्ती उत्सव में बनारस में आश्रम पर सप्ताह कथा की। फिर तीसरीबार गोपाल बाग में सप्ताह

अनुष्ठान किया। श्रीवृन्दावन में आश्रम के प्रतिष्ठा महोत्सव में श्रीमाँ के यहाँ बंगभाषा में इन्होंने प्रवचन किया। दो बार गुरु पूर्णिमा उत्सव में हरिद्वार, देहरादून सप्ताह कथा निमित्त पधारे।

श्रोताओं के आग्रह पर बरनाला, पञ्जाब, देहली, बसन्तनगर, जहानाबाद भी कथा निमित्त गए। श्रीसरकारस्वामी के आग्रह पर, कानपुर गंगाकुटी पर जुग्गीमल कमलापति के यहाँ मांजी के आग्रह पर एक मास कथा निमित्त रहे। जयपुर में भी सरसकुञ्ज वालों के 108 श्रीमद्भागवत अनुष्ठान में प्रधान व्यास रहे। शुकाश्रम बुलन्दशहर में भी सप्ताह अनुष्ठान किया। पोद्दारों के यहाँ मथुरा, कलकत्ते में कथा हुई। ऐसे अनेक प्रसंग हैं।

कृष्ण जन्म–भूमि मथुरा में भागवत भवन के शिलान्यास में 108 सप्ताह में श्रीहनुमानप्रसाद जी पोद्दार–सम्पादक 'कल्याण' ने इनके ही द्वारा मुख्य कथा प्रवचन सुना। तभी पूज्य श्रीराधा बाबाजी की आज्ञा पर पोद्दार जी ने गोरखपुर में श्रीमद्भागवत सप्ताहयज्ञ कराया और इनको ही स्मरण किया। श्रीधाम वृन्दावन में वेणुविनोदकुंज में श्रीबालकृष्णदास जी ने अनेक बार सप्ताह कथा श्रवण की।

श्रीब्रह्मचारी जी महाराज ने अग्रिम चैत्र नव सम्वत्सर उत्सव में यमुनापार 108 सप्ताह यज्ञ कराया और प्रधानव्यास इन्हें ही चुना। सब कृपालु सन्त भावुक भक्तगण इन पर स्नेह रखते हैं।

यह बार बार वही भागवती संहिता के वचन स्मरण करते हैं कि–

भवे भवे यथा भक्तिः पादयो तव जायते
तथा कुरुष्वदेवेश नाथस्त्वन्नो भवप्रभोः
नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनं
प्रणामो दुःख शमनः तं नमामि हरिं परम्।

यह परिचय प्रशंसा परक नहीं है। मुख्य भगवदनुग्रह से ही जीव दासानुभूति कर सकता है। इसी का निदर्शन है। विशेष क्या?

आपका दासानुदास–
बालकृष्णदास खेमका



द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में सप्रश्रय निवेदन

'वैष्णवावधान' का द्वितीय संस्करण कृपालु वैष्णवों एवं विद्वज्जनों के श्रीहस्त में समर्पित करते हुए अति प्रफुल्लित हैं। यह संकलन साधना के क्षेत्र में अति मूल्यवान् एवं हितकर रत्न है। 'अवधान' के कई अर्थ होते हैं- जैसे- ग्रन्थ के निष्कर्ष को प्रस्तुत करने वाले वचन, जिन्हें "सावधारणा-श्रुति" भी कहा जाता है। ये "प्रकरण-श्रुति" से अधिक बलवान् एवं सम्पूर्णग्रन्थके कथ्य निष्कर्षका प्रस्तुत करनेवाले वचन होते हैं; जैसे श्रीमद्‌भागवत में "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" यह "सावधारणा-श्रुति" वचन है। "अवधान" शब्द का 'कोश' के प्रसंग में भी प्रयोग होता है। जहां किसी 'शब्द' का एक ही संकेतित-अर्थ बताया जाये उसे 'कोश' कहते हैं। परन्तु जहां एक शब्द के अनेक अर्थ बताकर प्रसंगानुसार अर्थ ग्रहण किया जाता है उसे "अवधान-कोश" कहते हैं। 'वैष्णवावधान' भी विभिन्न अवसरों, देशों एवम् पात्रों के प्रति कहे गए शास्त्रीय अनुदेशों का "मुख्य लक्ष्यानुबंधी" संकलन है। 'अवधान' का एक अन्य अर्थ भी होता है 'सावधानी'। श्रीमद्‌भागवत में जो निर्देश दिए गए हैं उनका उपयोग व्यवहार-कर्म-ज्ञान-सांख्य-योग-मीमांसा-धर्मशास्त्र आदि अनेकों मन्तव्यों की सिद्धि के लिए समयानुसार भी किया जा सकता है। परन्तु किसी सर्वोत्तमलक्ष्यका निर्धारणकर सभी साधनोंका उसी लक्ष्यके लिए विनियोग कर लेना ही "साधन-साध्य" निर्णय है। यही सही 'बुद्धिमत्ता एवं मनीषा' है। "एषा बुद्धिमत्तां बुद्धिः मनीषा च मनीषिणाम्"। "वैष्णवावधान" ग्रन्थ स्पष्टतः इसी दृष्टिकोण को स्तुत करता है। यही इस ग्रन्थ की अपूर्वता भी है। यह साधनामार्ग में आने वाले भटकाव-फिसलन-प्रलोभन को हटाकर सर्वोत्तमलक्ष्य (विषय) का निर्देश करने वाला अतिश्रेष्ठ सारांश संकलन है। 'वैष्णवावधान' की विशेषता यही है कि श्रीमद्‌भागवत के बहुत प्रधान कथ्य-(सारांश-भाग) लीला-प्रसंग एवं इतिहास-कथन की बाढ़ में दबकर उत्सर्जित नहीं हो जावें, बल्कि नवनीत या अमृत के समान अवक्षेप के रूप में उन्हें यहां सुरक्षित कर लिया गया है। अतः यह ग्रन्थ श्रीमद्‌भागवत के "मूल

कथ्य का संकलन" है। ऐसा संकलन परमपूज्य श्रीमद् गुरुदेव एवं मेरे पिताश्री गोस्वामी श्री 108 नित्यानंदजी भट्टजी महाराज जैसा कोई मनीषी गोताखोर एवं रत्नपारखी ही कर सकता है। 'अवधान'- का अन्य अर्थ 'आदेश' या 'उपदेश' या सावधान करना भी होता है। जो "गुरु-सम्मत-पदावली" में 'विकल्प' की सम्भावना नहीं छोड़ता। अत: हमारा कर्तव्य है कि हम श्रद्धापूर्वक उसका "श्रवण" करें, विश्वास (स्वीकृति) पूर्वक 'मनन' करें एवं निष्ठापूर्वक 'भजन' करें।

"वैष्णवावधान" श्रीमद्भागवत महापुराण के सिद्धान्त-पक्ष का निष्कर्ष 'सार-संचय' है इसमें श्रीमद्भागवत के सभी साधन-साध्य निर्णयात्मक संवादों का संकलन किया गया है। ये सम्वाद है- सूत-शौनक (प्रथम-स्कंध) श्रीशुक-परीक्षित (द्वितीय स्कंध), प्रह्लाद-असुर बालक (सप्तम स्कंध), नारद-प्रचेता-(चतुर्थ स्कंध), श्रीकृष्ण-उद्धव (एकादश स्कंध), श्रीनारद-युधिष्ठिर (सप्तम स्कंध), श्रीब्रह्मा-देवर्षिनारद (द्वितीय स्कंध), विदुर-उद्धव (तृतीय स्कंध), नवयोगेश्वर-निमि (एकादश स्कंध) श्रीनारायण-ब्रह्मा (द्वितीय स्कंध), कपिल-देवहूति (तृतीय स्कंध) एवं अन्य बहुत से प्रसंग

यद्यपि 'वैष्णवावधान' रागानुगा साधनभक्ति की दृष्टि से किया गया एक समग्र संकलन है, तथापि वैधीभक्ति के अधिकांश अंगोंका भी रागानुगा भक्ति में उपयोग होता ही है। अत: रागानुगा के सभी पांचों अंगों- (1) स्वाभीष्ट-भावमय, (2) स्वाभीष्ट-सम्बन्धी, (3) स्वाभीष्ट-अनुकूल, (4) स्वाभीष्ट-अविरुद्ध एवं (5) स्वाभीष्ट-विरुद्ध का भी यहाँ संकलन है। अन्यथा मनमुखी होने से एवं श्रुति-स्मृति-पुराण-पांच-रात्र-सम्मत न होने से एकांगी-भक्ति "उत्पात-भक्ति" हो जायेगी।

श्रुति स्मृति पुराणादि पांचरात्र-मतं विना
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिः उत्पातायैव केवलम् ॥

रागानुगा के अनुरूप योगपीठ ध्यान के लिए यहां "वाराह-संहिता" के वृन्दावन रहस्य के अध्याय को भी उद्धृत एवं अनूदित कर दिया गया है, जो श्रीमद्भागवत के सिद्धान्त का ही पोषक है। इस उपासना-पद्धति को "सर्वत्र" एवं "सर्वदा" प्रतिपादित करने के लिए सभी प्राचीन प्रमुख आचार्यों एवं अन्त: साक्ष्यों को भी उल्लखित किया गया है।

इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण में शीर्षकोंका विधान नहीं था। श्लोकों के भावानुवाद भी मूल के क्रम का उल्लंघन कर रहे थे। उन्हें अधिक उपयोगी

बनाया गया है। कहीं-कहीं भाषा के प्रवाह, प्रकाशन की त्रुटि मार्जन एवं पाठकों की सुख-बोधता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन भी भाषा में कर दिए गए हैं तथापि मूलस्वरूप की "आत्मा" को अविकारी ही बनाए रखा है। श्रीमद्गुरुदेव इस अपराध को क्षमा करेंगे। विराम चिह्नों को भी व्यवस्थित किया गया है। इस प्रकार संकलन को सभी दृष्टियों से उपयोगी बनाने का प्रयास हुआ है।

प्रारम्भिक कथनों में श्री १०८ गुरुदेव एवं परम गुरुदेव के जीवन चरित दिए गए हैं। चरितों में हो सकता है कि साधारण पाठक की अधिक रुचि नहीं हो, परन्तु वे ऐतिहासिक दस्तावेज भी हैं एवं पहचान भी। अत: उपयोगी है।

श्रीगुरुदास जी एवं श्रीराधाकृष्ण जी देसाई व परिवार, मुम्बई ने इस अमूल्य ग्रन्थ रत्न के द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करने की सेवा स्वीकार की है, एतदर्थ वे साधुवाद एवं आशीर्वाद के पात्र हैं। श्रीमदनमोहन लाल, प्रभु श्रीगौर हरि एवं गुरुवर्ग की उन पर पूर्ण कृपा बरसे, यही शुभाशीर्वाद है। ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण-संयोजन में श्री (डा.) भागवत कृष्ण नांगिया जी एवं श्रीहरिनाम प्रेस के कुशल स्टाफ-परिवार के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता एवं आभार व्यक्त करते हैं।

शेष में साधक समुदाय के लिए श्रीमद्भागवत के मंथन द्वारा प्राप्त यह "वैष्णवावधान" अमृत अति उपयोगी होगा, इसका पान किया जाय ऐसी आशा एवं कामना है।

श्रीधाम वृन्दावन — भावत्कः

वसन्तोत्सव २०७६ वि. — **अच्युतलाल भट्ट**

(गोस्वामी (डा.) अच्युतलाल भट्ट)

पुत्र- श्री १०८ नित्यानन्दभट्ट जी महाराज, भागवत भूषण

(श्रीमद्भागवत के परम्परासिद्ध प्रवचनकार)



प्रथम-संस्करण की प्रस्तावना

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्याः
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥

प.पु. भागवतमहात्म्य अ. 3, श्लो. 3

सकलभुवनमध्ये श्रीवृन्दावने तथाह–

"त्रैलोक्ये पृथ्वी धन्या यत्र वृन्दावनं महदिति"। 'निर्धनाः' प्राकृत-सम्पत्तिरहिताः इष्टसम्पत्तिसहिताः 'ते' "रूप-सनातनादयः" भक्ताः धन्याः। येषां हृदयेषु श्रीहरेः श्रियायुक्तस्य श्रीकृष्णस्य 'एका' प्रेमलक्षणा भक्तिर्निवसति सर्वदा वासं करोति। भक्तिर्भक्तनिष्ठत्वात् तथाह भगवता, –"अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।"

हरिः 'श्रीकृष्णचैतन्यदेवः' तथाहि–"हरिः पुरटसुन्दर," अपिशब्देन आनन्दनिष्ठोऽपि, आह्लादनभक्तिस्वरूपोऽपि। सः स्वयं न रमते 'एकोऽहं बहुस्याम्'। निजं लोकं 'गोलोकं' अथवा 'नवद्वीपं'। सर्वथा 'संन्यास- ग्रहणं कृत्वा' अथ तीर्थभ्रमणमिषेण प्रयागं गत्वा। 'तेषां रूपसनातनादीनां' भक्तिसूत्रोपनद्धः सन् 'वैधी'– रागानुगादि रसं 'सूत्ररूपेण उपदिश्य'। हृदि 'प्रविशति' सर्वदा 'रसिकजनानां' आस्वादनार्थं हृदयमन्दिरे वासं करोतीति दिक्।

इस चतुर्दश भुवन के मध्य श्रीधाम वृन्दावन धन्य है।–कहा भी है कि– त्रिलोकी में पृथ्वी-मण्डल धन्य है, जिसके मध्य श्रीवृन्दावन-धाम विराजमान है। वहां प्राकृत सम्पत्ति-रहित, इष्ट-सम्पद् से पूर्ण वे श्रीरूप सनातनादिक भक्त धन्य हैं जिनके हृदय-मन्दिर में प्रिया-प्रियतम की मुख्या प्रेमलक्षणा भक्ति सर्वदा निवास करती है। क्योंकि भक्ति में भक्तनिष्ठत्व-धर्म विराजमान है। इसीलिए भगवान् श्रीउद्धव से कहते हैं कि मैं एकान्ती भक्त के

पीछे-पीछे अनुगमन करता हूँ। इसलिए कि मेरे रोम-कूपों में जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड विराज रहे हैं, वे उन भक्तों की चरणरज से पवित्र हो जाएँ।

हरि श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव ही हैं। जिन्हें सुवर्ण-वर्ण अङ्ग वाला बतलाया है, 'अपि' शब्द से आनन्दनिष्ठ आह्लादन भक्ति-स्वरूप भूत होते हुए भी वे अकेले स्वयं रमण नहीं करते हैं। 'मैं एक बहुत रूप होकर क्रीड़ा करूँ।'—ऐसा विचार करते हैं। अतएव वे निजलोक श्रीगोलोक अथवा नवद्वीप को सर्वथा त्याग कर, अर्थात् संन्यास ग्रहण कर, 'अथ' तदनन्तर तीर्थ-भ्रमण मिष से प्रयागधाम एवं काशी में रहकर उन रूप-सनातनादि भक्तों के भक्तिसूत्र में बँधकर 'वैधी' रागानुगा भक्ति का 'रस-सूत्र-रूप' से उपदेश देकर सर्वदा रसिक-जनों के आस्वादनार्थ हृदय-मन्दिर में वास करते हैं। इस प्रकार भागवती संहिता की महिमा का उक्त कथनने निर्णय कर दिया कि 'भागवत धर्म का उद्गम-स्थान' श्रीकृष्ण एवं उनके भक्त ही हैं। कहा भी है—

कृष्ण तद्भक्तकारुण्यमात्रलोभैकहेतुका। –रागवर्त्मचन्द्रिका

अर्थात् श्रीकृष्ण-कृपा अथवा उनके भक्तों की निरुपाधिक कारुण्य-कृपा-मात्र से ही वैष्णवधर्म में लोभ उत्पन्न होता है।

हम कलिहत जीव इन सब कारणों को भूल गये। हमारी दशा तो 'मारुति' श्रीहनुमान् की तरह हो गयी। जैसे वह ऋषि-मुनियों के शाप से अभिभूत हो गये कि—तुम्हें जब कोई उद्बोधन करायेगा, तभी तुम्हें अपने स्वरूप का ज्ञान होगा। इसी प्रकार, हम वैष्णव हैं, जो उद्बोधन चाहते हैं। हमारा क्या कर्तव्य है? यह हम भूल गये।— प्रस्तुत "वैष्णवावधान" ग्रन्थ का उद्देश्य उसी कर्तव्य का बोध कराना है। हमारे वैष्णवाचार्यों ने भी अथक परिश्रम कर बारम्बार सर्वत्र पृथ्वी-पर्यटन कर हमें यही दिखलाया कि—

विष्णोर्हिताखिलाचार सः हि वैष्णव उच्यते। –रागवर्त्मचन्द्रिका

भाई! वैष्णव वही है जिसका अखिल-आचार इष्टके निमित्त होता है।—

कलियुग-पावनावतार श्रीमन्महाप्रभुने तो भक्ति-विरोधियोंसे मार खाकर भी उन्हें प्रेमभक्तिदान दिया था।

श्रीमद्वल्लभाचार्य ने विधर्मियों के अत्याचारों से दुःखी होकर हमें सदुपदेश दिया है—

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु चा
ऽसत्क्रीडा व्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥ श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्र

भाई वैष्णव-गणो! इस समय देश म्लेच्छाक्रान्त हो गया है, पाप ने सर्वत्र गृहों में वास कर लिया है। भगवत्-आराधन करने में भक्त भयभीत हो गये हैं, अतएव अब कृष्ण ही हमारी गति हैं।

श्रीमत् शङ्कराचार्य ने सनातनधर्म में निष्ठित राजाओं की सहायता से बौद्धों को पराजित कर श्रीभगवत्-आज्ञावश अद्वैतमत प्रवर्तित किया एवं पश्चात् यही उपदेश दिया—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते! गोविन्दाष्टक

श्रीनिम्बार्कस्वामी ने जीव का स्वरूप-ज्ञान कराया—

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनम्—इत्यादि दशश्लोकी

(भाई, यह जीव ज्ञान-स्वरूप है, 'सर्वदा श्रीहरि के आधीन रहने वाला है, अणु है।')

श्रीमद्रामानुजाचार्य 'प्रपत्तिधर्म का हमें उपदेश देते हैं। श्रीभगवान् कृष्ण की यह आज्ञा याद दिलाते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

श्रीभगवद् गीता, अ. 18, श्लोक 66

(सब धर्मों को त्यागकर मेरी शरणागति ग्रहण करो, मैं तुम्हें सब प्रत्यवायों से मुक्त करूँगा।)

श्रीमध्वमुनि दो अंगुलियाँ दिखाकर हमें सिखाते हैं कि भाई!

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीविजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम॥

गीता, अ. 18, श्लोक 78

(भाई! जिधर 'भक्त' और भगवान् हैं उधर ही श्री, विजय, और भूति विराजमान् हैं।)

जिस प्रकार गौ माता के चारों स्तनों से चार दुग्ध-धारा गिरती हुई भी वह दुग्ध एक रूप में ही हैं। उसी प्रकार श्रुतिमाता द्वारा कहा हुआ सदुपदेश सब आचार्यों के श्रीमुख से अलग-अलग निर्गलित होकर भी एक ही है।

प्रमाण निर्णय—

ध्यान है कि- सभी प्रमाणों में शास्त्र ही सर्वोत्तम प्रमाण है—

प्रमाण के बिना प्रमेय की सिद्धि नहीं होती। भगवान् की आज्ञा है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

गीता अ. 16, श्लोक 24

'यह करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए', इसमें शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र ही चक्षु है। जिस प्रकार नेत्र के बिना वस्तुज्ञान होना कठिन है उसी प्रकार शास्त्र हैं, अत: शास्त्र-विधि से कर्म करो। शास्त्रों का तात्पर्य "अनुबन्ध चतुष्टय" से जाना जाता है। इसीलिए सब शास्त्रों में 'सम्बन्ध-चतुष्टय' का निर्णय किया गया और इस निर्णय करने में प्रथम 'प्रमाण' का निर्णय करना पड़ता है।

मनुष्य में 'भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि दोष स्वभाव से लगे हुए हैं। अत: प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमानादि प्रमाण सदोष होने से वे प्रमाण नहीं हो सकते। प्रमाणों के मध्य में 'शब्द-प्रमाण' ही प्रधान है। जिसे 'अक्षर-ब्रह्म' कहा जाता है। 'शब्द' में 'आप्तवचन' प्रधान है। आप्तों में लौकिक-अलौकिक ज्ञान का कारण अप्राकृत वचन 'वेद' भगवान् ही हमारे यहाँ मुख्य प्रमाण हैं जिन्हें भगवान् के नि:श्वास-भूत कहा जाता है। परन्तु काल के प्रभाव से अब 'वेद' भी दुष्पार-दुरधिगम हो गये हैं। मन्त्रसंहिता को जानना कठिन है। इसलिए वेदार्थ-निर्णायक में इतिहास-पुराण ही अतिश्रेष्ठ हैं। महाभारत में कहा है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

इतिहास-पुराणों के द्वारा ही वेदभगवान् के अर्थ को स्पष्ट किया जाता है, इसीलिए इनका नाम पुराण है। अर्थात्—'पूरणात् पुराणम्।' 'मन्त्र' के तात्पर्य की पूर्ति करने वाले होने से इनका नाम 'पुराण' हुआ, इसीलिए पुराण को 'पञ्चम वेद' बतलाया गया है। कहा भी है—

इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते।

भा.स्कंध. 1, अ. 4, श्लोक 20

क्योंजी! जब इतिहास-पुराण पाँचवें वेद हैं, तो सूतादिकों का अधिकार उनके अध्ययन में कैसे हुआ? इसके उत्तर में कहना पड़ेगा— 'श्रीकृष्ण-नाम' की तरह पुराणों में सभी का अधिकार है।

नारदपुराण में कहा है—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने। पुराणमन्यथाकृत्वा तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्॥

(भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि मैं वेदार्थ से पुराणार्थ को अधिक मान देता हूँ। जो वेद से पुराण को न्यून मानते हैं वे नीचयोनि में जन्म लेते हैं।)

स्कदपुराण में भी कहा है—

वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तम।
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं चालयिष्यति॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृतः पुरा।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः।
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते॥

जिस प्रकार वेद निश्चल हैं, उसी प्रकार पुराणार्थ भी अटल हैं। हे द्विजोत्तम! मैं ऐसा मानता हूँ। अल्प पढ़े हुए जनों से वेद भगवान् भयभीत रहते हैं कि कहीं मेरे अर्थ का ये अनर्थ न कर देवें। परन्तु इतिहास-पुराण को श्रीभगवान् व्यास ने पहले से ही निश्चल बना दिया। जो वेद से नहीं जाना जाता उसे स्मृति द्वारा जानो। जो वस्तु वेद-स्मृति दोनों के द्वारा नहीं समझी जाती, वह पुराण द्वारा गायी जाती है।

जीवों की त्रिगुणात्मक वृत्ति होने से पुराण भी तीन प्रकार के हैं—'सात्त्विक', 'राजस' और 'तामस'। सात्त्विक पुराणों में श्रीविष्णु का महत्त्व है। राजस पुराणों में श्रीब्रह्मा का। संकीर्ण में सरस्वत्यादि शक्तियों की महिमा गायी गयी है। तथापि अर्वाचीन क्षुद्रबुद्धिवाले जीवों के मध्य वेद की तरह ही पुराणों के तात्पर्य जानने में भी संशय उपस्थित हो गया है। अब निर्णय किस प्रकार हो? इस पर कहते हैं कि भाई!

सत्त्वात् संजायते ज्ञानं सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम्। तत्त्वसन्दर्भे

सत्त्वगुण से ज्ञान उदय होता है, सत्त्वगुण से ब्रह्मदर्शन होता है—यही जानकर श्रीकृष्ण द्वैपायन श्रीव्यास ने 'ब्रह्मसूत्र' का निर्माण किया। परन्तु उन ब्रह्मसूत्रों में अक्षर भी अल्प होने से और अक्षरार्थ गूढ़ होने से तत्त्ववेत्ताओं के हृदय में यह विचार उदय हुआ कि— कोई ऐसा एक पुराण होना चाहिए जो 'अपौरुषेय' हो और जिसमें 'सब शास्त्रों का सार' रख दिया गया हो। ऐसे शास्त्र 'श्रीमद्भागवत' ही माने गए। अतः निरपेक्ष होकर मानना पड़ेगा कि- ऐसा शास्त्र सर्वपुराणचक्रवर्तिभूत श्रीव्यास-समाधिलब्ध 'श्रीमद्भागवतपुराण'

ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। जब सब शास्त्रों की रचना करने के बाद भी श्रीव्यासदेव के मन में सन्देह रहा एवं संतोष नहीं हुआ तब श्रीनारद के इस उपदेश से कि– 'कोई ऐसा ग्रन्थ बनाइये जिसमें पद-पद और अक्षर-अक्षर में श्रीकृष्णचरित्र हो,' उन्हें समाधि में इसकी उपलब्धि हुई। श्रीमद्‌भागवत के विषय में मत्स्यपुराण में कहा है–

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।

जिस प्रकार गायत्री माता हमें उस 'परतत्त्व' के ध्यान का ही उपदेश करती है उसी प्रकार श्रीभागवती संहिता भी 'परं धीमहि' शब्द द्वारा उन श्रीकृष्ण का आराधन-निष्कर्ष रूप में बतलाती है।

गरुडपुराण में कहा है कि– अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः। यह 'श्रीमद्भागवतपुराण' ब्रह्मसूत्र का अर्थ है। इतिहास-प्रधान श्रीमहाभारत का यह तात्पर्यार्थ है। श्रीमहाभारत स्पष्ट कहते हैं कि–

एष निष्कण्टकः पन्था यत्र संपूज्यते हरिः।
कुपथं तं विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम्॥

विष्णुसहस्रनाम

(यही एक निष्कण्टक मार्ग है जिसमें श्रीहरि की आराधना की जाय। कुपथ मार्ग वह है जो श्रीगोविन्द-रहित है।)

श्रीमद्‌भागवतमहापुराण इसी 'तात्पर्यार्थ' की स्थापना करते हैं कि–

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिस्सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्॥

भाग. स्कंध. 2, अ. 2, श्लोक 36

(इससे यह निर्णय हुआ कि– सर्वप्रकार श्रीहरि सर्वदा सर्वत्र श्रवणीय, कीर्तनीय एवं स्मरणीय हैं।)

श्रीमद्भागवतीसंहिता में ही कहा है–

इतिहासपुराणानां सारं सारं समुद्धतम्।

भाग. स्कंध. 1, अ. 3, श्लोक 42

(इस श्रीमद्भागवत महापुराण में इतिहास-पुराणों का सार-सार एकत्रित कर रख दिया गया है।)

यही नहीं, यह 'वेदसंहिता' ही है–

"यत्रैषा सास्वती श्रुतिः।" "पुराणसंहितामेतां। चक्रे सात्वत संहिताम्"। "संहितां– वेदसम्मिताम्।" इत्यादि वचन प्रमाण हैं।

भाग. स्कंध. 1, अ. 7, श्लोक 6 आदि.

यह 'श्रीमद्भागवत' स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। पद्मपुराण में श्रीमद्भागवत-माहात्म्य प्रसंग में स्पष्ट कहा है–

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि।

प. पु. भागवतमाहात्म्य, अ. 6, श्लोक 20

इतिहास वक्ता श्रीसूत मुक्तकण्ठ से कहते हैं–

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिस्सह। कलौ नष्टदृषामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः॥

भाग. स्कंध. 1, अ. 3, श्लोक 43

(जब द्वापर युग की समाप्ति पर, कलियुग का आरम्भ हुआ– और भगवान् श्रीकृष्ण धर्म-ज्ञानादिक शक्तियों के सहित अन्तर्हित हुए, अर्थात् अज्ञान-अन्धकार छा गया। तब पुराण-सूर्य-रूप होकर श्रीकृष्ण ही श्रीभागवत के रूप में उदय हुए हैं।)

यहाँ पर श्रीमद्भागवत को सूर्य बतलाने का तात्पर्य यह है कि-सूर्य का प्रकाश इतना जगमग होता है जिसके सामने अन्धकार टिक ही नहीं सकता। सूर्य तीन कार्य करते हैं–वस्तु-ज्ञान, जीव-जाति मात्र को स्वधर्म में प्रवर्तन, और चोरों (अधर्मियों) से भय-निवृत्ति। उसी प्रकार श्रीमद्भागवत यथार्थ वस्तु का ज्ञान, जैव धर्म में प्रवर्तन, और संसार के भय की निवृत्ति–स्वभावतः करते हैं, अतः वे जीवन-दायी हैं।

मुक्ताफल के टीकाकार ने कहा है–

वेदाः पुराणं काव्यं च प्रभुर्मित्रं प्रियेव च।
बोधयन्तिहि तत् प्राहुस्त्रिवृद्भागवतं पुनः॥

वेद भगवान् तो प्रभु (राज-आज्ञा) की तरह, पुराणगण मित्र की तरह एवं काव्य रचना प्रिया (पत्नी) की तरह धर्म सिखलाते हैं। ये तीनों ही तीन प्रकार की नीतियां अपनाते हैं जैसे नीति, वेद भगवान् की; भेद-नीति पुराण की; साम-नीति–काव्य की; परन्तु ये सभी तीनों नीतियाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में विराजमान हैं।

इसीलिए इस भागवतीसंहिता के एकांश को प्रस्तुत संकलन के रूप में वैष्णवों के कर्तव्य-उपदेश-संग्रह के लिए 'वैष्णवावधान' यह नाम दिया गया

है। ऐसा देखा भी जाता है कि जब वैष्णवों की पंक्ति एकत्रित होती है तब वहाँ ढिंढोरा पीटा जाता है कि—

साधु, सावधान! सुनो अवधान!

इसी प्रकार वैष्णव तथा आचार्य-चरणों की आज्ञावश वैष्णवों के हितार्थ प्रस्तुत छोटा-सा संकलन श्रीभागवत महापुराण से संकलित किया गया है। इससे वैष्णव जगत् में यदि जागृति हुई, तो यह दास अपने को कृत-कृत्य मानेगा। इसमें त्रुटि तो बहुत रह गयी होंगी और हैं ही, क्योंकि—

यो वा अनन्तस्य गुणानन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।

भाग. स्कंध. 11, अ. 4, श्लोक 2

'अनन्त के अनन्त गुणों को मैं जानता हूँ', जो यह कहता है, यह उसकी बाल्य बुद्धि है। जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं परन्तु क्या आकाश का पार किसी पक्षी ने कभी पाया है। उसी प्रकार यह प्रयास है? तथापि वाणी को पवित्र करने के लिए यह चंचु-प्रवेश मात्र ही है। कहा भी है कि—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिश्रेणिं स नारोहति दुर्मतिः॥

वाक्-इन्द्रिय को पाकर भी जो व्यक्ति विष्णु का कीर्तन नहीं करता एवं मोक्ष की श्रेणी (सोपान) रूप मानवदेह को पाकर भी आरोहण नहीं करता है वह दुर्मति है। क्योंकि- यह जीव मायिक व्यवहार में बँधकर परमार्थ की वस्तु को भी लाभ, पूजा और प्रतिष्ठा के बन्धन में बाँध लेता है।

हम लोग वैष्णव होकर भी लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा के बन्धन में बंध गये हैं। ऐसी दशा में श्रीमद्भागवती संहिता हमें क्या उद्बोधन देती है, यह स्मरण कराना ही मात्र "वैष्णवावधान" का उद्देश्य है।

अलमिति विस्तरेण!

भगवत्-भागवतकृपेच्छुः
नित्यानन्द भट्ट
श्रीधाम वृन्दावन

श्रीपाद—
जीवगोस्वामि आविर्भावोत्सवे
पौषशुक्ले, तृतीयायां भृगुवासरे
2023 विक्रमसम्वत्सरे।



॥ श्रीमद्राधा-मदनमोहनौ जयतः ॥

वैष्णवावधान

मङ्गलाचरणम्—

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्त साम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥

(भाग. स्कंध. 2, अ. 4, श्लोक 14)

सात्वतां यादवानां गोपानां मध्ये ऋषभाय—श्रेष्ठाय। सात्वताः— गोपाः। तथाह श्रीभगवता—

यादवानां हितार्थाय धृतो गोवर्द्धनो मया। विष्णुपुराणे

तस्मै श्रीनन्दनन्दनाय नमः। तथाह श्रीब्रह्मणा— पशुपाङ्गजायेत्यत्र—पशून् पाति रक्षतीति पशुपः, गोपः तस्य श्रीनन्दस्य अङ्गजः पुत्रः, तस्मै। मुहुः—वारं वारम्। नमोनमः। अस्तु। इति आदरे वीप्सा।

ननुः कथं भूतः? कुयोगिनां—भक्तिहीनानां कालियादीनां विदूरा काष्ठा दिगपि यस्य। दुर्विज्ञेयायेत्यर्थः। यथाह श्रीशुकः—तं प्रेक्षणीयेत्यत्र 'सन्दंस्य मर्मसु'। तत्र मर्मे सन्दंशनमासुरभावाभिभूत-हृदयं विना न सम्भवति।

स्वधामनि स्व-धनरूपं धाम्नि। निभृतनिकुञ्ज-मन्दिरे राधया इति शेषः राधसा—गौरकान्त्या। निरस्तं साम्यं च अतिशयं च, यस्मात् तेन निरस्त-साम्यातिशयेन। अथवा जन्माद्यस्य यतः" इति न्यायात् आद्यस्य शृंगाररसस्य यतः श्रीराधिकायाः जन्म प्रादुर्भावः। तस्याः आश्रयजातीया-प्रेम-उत्कृष्ट धर्म-विशिष्टत्वात् कृष्णेन सह साम्यमपि निरस्तम्। शक्तिशक्तिमतोः अभेदात् लीलामयत्वात् सर्वासु आतिशय्यमपि स्थापितम्। तस्याः राधायाः कान्त्या (राधसा) ब्रह्मणि श्रीवृन्दावने यः एकीभूय मिलित्वा रेमे तस्मै लीला रताय नमः।

'राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका विभ्राजन्तेति दिक्।'

श्रीकृष्ण सात्वत (यादव) गोपों के मध्य में श्रेष्ठ हैं। श्रीभगवान् ने ब्रज के गोपों को यादवों के मध्य ही बतलाया है, कि— "यादवों के हित के लिए मैंने गोवर्द्धन धारण किया था।" इसी प्रकार श्रीनन्द-नन्दन को श्रीब्रह्मा ने स्तुति में 'पशुपाङ्गज' अर्थात् गायों की रक्षा करने वाले 'नन्द' का पुत्र बतलाया था। अतः वे "सात्वत ऋषभ" कहलाये। उनको बार-बार प्रणाम

है। यहाँ आदर में वीप्सा है। क्योंजी! वे कैसे हैं? उत्तर है कि– कुयोगी, भक्तिहीन, असुरस्वभाव वाले कालियनाग प्रभृति उनकी प्राप्ति की दिशा को भी नहीं जानते हैं। अन्यथा वह कालिय ऐसे सुकुमार श्रीकृष्ण का दंशन कैसे करता? आसुर भाव के बिना क्या डसना सम्भव हो सकता था? वे अपने धनरूप धाम निकुञ्ज-मन्दिर में श्रीराधिका की गौर कान्ति से युक्त हो साम्य और अतिशयता को निरस्त कर क्रीड़ा कर रहे हैं। उन्हें प्रणाम है। अथवा– शृङ्गार रस का प्रादुर्भाव श्रीराधिका जी के द्वारा होने से वेही आश्रय जातीय प्रेम से मुख्यत: युक्ता हैं। अत: श्रीकृष्ण के साथ उनकी समानता दूर हो जाती है अर्थात् वे कृष्ण से भी श्रेष्ठा हैं। क्योंकि वे शक्तिमान् की शक्ति होने से अभेद प्राप्ता हैं, इस कारण किसी अन्य यूथेश्वरी का उनसे 'अतिशय' भाव भी निरस्त हो जाता है। ऐसे श्रीगौर-श्याम-युगल-स्वरूप एक होकर ब्रह्म स्वरूप व्यापक श्रीवृन्दावन में क्रीड़ा कर रहे हैं, उन्हें नमस्कार है!

इसी से ऋग्वेद के परिशिष्टभाग में भी कहा है कि–

श्रीराधिका के बिना माधव की और बिना माधव के राधाकी की शोभा नहीं है।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवना: खसादय:।
येऽन्ये च पापा: यदपाश्रयाश्रया: शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नम:॥

(भाग. स्कंध. 2, अ 4, श्लोक 18)

किरात-हूण-आन्ध्र-पुलिन्द-पुल्कस-आभीर-कङ्क-यवन-खसादय: 'अन्ये च' ये पापा:। पापद्वारेणैवोत्पन्ना: ते। यदपाश्रयाश्रया:– ये- भगवत्-उपाश्रया-उप समीपे, आश्रयन्तेति पार्षदा:–श्रीमध्वाचार्यादय:। तदाश्रया:–तेषां आश्रिता: अन्येऽपि शुध्यन्ति! अर्वाचीनवैष्णवा: अपि तथैव यं परमपुरुषमुपाश्रिता:। ये भागवतास्तदाश्रया: आधुनिका: तेऽपि तथैव शुध्यन्ति। तस्मै प्रभविष्णवे–कृष्णाय नम:। तथाह–रासक्रीडाया: फलस्तुतौ श्रीशुकेन-विक्रीडितं व्रजवधूभि: इति.। विष्णोर्विक्रीडतमत्र रासमण्डले 'तासां मध्ये द्वयोर्द्वयो:' व्यापकत्वं कथितमिति। सद्गुरु- चरणाश्रय-भजनेनैव जाति- कर्माणां बन्धनात् पापिन: शुध्यन्तीति। प्रभविष्णवे इत्यनेन प्रारब्धपापनाशकत्वं भक्तेर्व्यञ्जितम्। सद्गुरुचरणाश्रयं विना भगवत्-साक्षात्कारो न भवतीति। यथाह श्रीमैत्रेय:–

हरेर्विदित्वा गतिमङ्गनारदात् ददर्श तत्राभिजितमिति दिक्।

भा. स्कंध. 3, अ. 18, श्लोक 1

किरात, हूण, पुलिन्धादि और अन्य वे जातियां—जिनकी पाप द्वारा ही उत्पत्ति है—वे सब जिन भगवान् के आश्रित नित्यपार्षद श्रीमध्वादि आचार्यों के आश्रित होकर ऐसे अर्वाचीन वैष्णवगणों की कृपा से शुद्ध होते हैं, उन श्रीप्रभविष्णु श्रीकृष्ण के लिए प्रणाम है!

यहां रास-क्रीड़ा की फल-स्तुति में श्रीशुकमुनि ने श्रीकृष्ण को ही 'विष्णु' बतलाया है। क्योंकि, रास-मण्डल में गोपियों के मध्य व्यापक होकर वे विराजमान होते हैं। तात्पर्य यह है कि सद्गुरु के चरणों का आश्रय लेने से ही जातिकर्म-बन्धन से पापीगण भी शुद्ध हो जाते हैं। क्योंकि भक्तिमें 'संचित' 'क्रियमाण' एवं 'प्रारब्ध' सभी कर्मों के नाश की शक्ति है।

श्रीगुरुचरणाश्रित हुए बिना भगवत्-साक्षात्कार नहीं होता। जैसा कि श्रीमैत्रेय ने भी कहा है कि—जब देवर्षि श्रीनारद ने हिरण्याक्ष को बतलाया कि "भगवान् वराह इधर हैं", तब ही उसे उनका दर्शन हुआ था, पहले नहीं।

आत्म कल्याण का उपाय : भक्तिधर्म—

'आत्म-शान्ति' का सम्यक् उपाय 'भक्ति-धर्म' के अतिरिक्त दूसरा नहीं बतलाया गया है। श्रीसूतमुनि कहते हैं कि—

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य-प्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति॥

भाग. स्कंध. 1, अ. 2, श्लोक 6

जीव मात्र के लिए भक्ति ही परम धर्म है; वह फलानुसन्धान-रहित हो और ज्ञानकर्म द्वारा आवृत न हो अर्थात् कृष्णानुशीलन-रूप धर्म ही जिसमें प्रधान हो, उसीसे आत्म-शान्ति मिलती है।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

भाग. स्कंध. 1, अ.2, श्लोक 8

धर्म का ठीक-ठीक अनुष्ठान करने पर भी यदि मनुष्य के हृदय में भगवान् की लीलाकथाओं के प्रति अनुराग का उदय न हो तो वह श्रम केवल श्रम ही है।

धर्मस्यह्यापवर्गस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्व-जिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

भाग. स्कंध. 1, अ. 2, श्लोक 9-10

धर्म का फल मोक्ष है; उसकी सार्थकता अर्थ-प्राप्ति होना नहीं है। अर्थ केवल धर्म के लिए है, भोग-विलास उसका फल नहीं है। भोग-विलास का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नहीं है—उसका प्रयोजन तो जीवन-निर्वाह है। जीवन का फल-तत्त्व जिज्ञासा है, स्वर्गादि-प्राप्ति फल नहीं है।

श्रीकृष्ण-रति (प्रेम) : सर्वोत्तम स्वाभीष्ट-पुरुषार्थ—

श्रीप्रह्लाद भी असुर बालकों को वैष्णवों के इन्हीं कर्तव्यों का उपदेश करते हैं कि—

तत्रोपायसहस्त्राणामयं भगवतोदितः। यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः॥

भाग. स्कंध. 7, अ. 7, श्लोक 29

यों तो इन त्रिगुणात्मक कर्मों की जड़ उखाड़ फेंकने के लिए अथवा बुद्धि-वृत्तियों का प्रवाह बन्द करने के सहस्त्रों साधन हैं, परन्तु जिस उपाय से और जैसे सर्वशक्तिमान् भगवान् में स्वाभाविक निष्काम 'प्रेम' उदय हो जाय, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। यह बात स्वयं भगवान् ने कही है—

नह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्॥
भगवान् ब्रह्मकार्त्स्नेन त्रिरनवीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥

भागवत स्कंध. 2, अ. 2, श्लोक 33-34

संसार-चक्रमें पड़े हुए मनुष्यके लिए जिस साधनके द्वारा उसे भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है। भगवान् ब्रह्माने एकाग्र-चित्तसे सारे वेदोंका तीन बार अनुशीलन करके अपनी बुद्धिसे यही निश्चय किया कि- जिससे सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्यप्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

(इस अनन्य प्रेम (रागानुगा) को प्राप्त करने के लिए पांच तत्त्वों का विचार साधक को करना चाहिए। (1) स्वाभीष्ट-आराध्य एवं भाव, (2) स्वाभीष्ट-साधन, (3) स्वाभीष्ट-अनुकूल रहनी, (4) स्वाभीष्ट अविरुद्ध-वातावरण, (5) स्वाभीष्ट-विरुद्ध वस्तुओं का त्याग। इन्हीं का क्रमशः वर्णन किया जाता है- संपादक)

1. आराध्य तत्त्वः निर्धारण : गुरु-नाम-धाम-कृष्ण—

वह 'प्रेमलक्षणा रति' कैसे उदय हो, उसका साधन बतलाते हैं—

गुरुशूश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च॥
श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम्।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः॥
हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः।
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधुमानयेत्॥
एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे।
वासुदेवे भगवति यथा संलभते रतिम्॥

भा. स्कंध. 7, अ. 7, श्लोक 30-33

श्रीगुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, अपनेको जो मिले, उस सबका प्रेमपूर्वक भगवान् को समर्पित कर देना, भगवत्-प्रेमी महात्माओं का सत्सङ्ग, भगवान् की आराधना, उनकी कथा-वार्ता में श्रद्धा, उनके गुणों और लीलाओं का कथन एवं कीर्तन, उनके चरणकमलोंका ध्यान और उनके मन्दिर, मूर्ति आदिके दर्शन-पूजनादि करना। इन साधनों से भगवान् में स्वाभाविक प्रेम उदय होता है।

'सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियों में विराजमान हैं'—ऐसी भावनासे यथाशक्ति सभी प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करे और हृदयसे उनका सम्मान करे।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके जो साधक साधन-भक्ति का अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उस भक्ति के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य 'प्रेमलक्षणा रति' प्राप्त होती है।

श्रीप्रचेताओं ने श्रीदेवर्षि नारदसे प्रार्थना की थी कि- भगवान् श्रीहरि के शीघ्र प्रसन्न होने का क्या उपाय है? तब श्रीनारद आदेश देते हैं—

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्ट्या येन केन वा। सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः॥

भाग. स्कंध. 4, अ. 31, श्लोक 19

जीवमात्र पर दया करने से, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहने से, तथा समस्त इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करके शान्त करनेसे शीघ्र ही सन्तापहारी श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। इसीसे कहा है—

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम्। मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः॥

भाग. स्कंध. 4, अ. 30, श्लोक 19

जिन लोगों के कर्म भगवदर्पण-बुद्धि से होते हैं और जिनका सारा समय मेरी कथा-वार्त्ता ही में बीतता है, वे गृहाश्रम में रहें तो भी घर उनके बन्धन का कारण नहीं होता।

प्रेमोदय की श्रेणियां—

श्रीसूतमुनि साधनभक्ति क्रम में 'श्रद्धा' से 'प्रेमलक्षणा भक्ति' तक उदय के विभिन्न स्तरों को दिखलाते हैं—

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेव-कथा-रुचिः।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थ-निषेवणात्॥ (श्रद्धा-साधुसंग-भजन-रुचि)
शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्य-श्रवण-कीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्॥ (भजनक्रिया-अनर्थ निवृत्ति)
नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।
भगवत्युत्तम-श्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी॥ (निष्ठा)
तदारजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥ (रुचि)
एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्व-विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते॥ (आसक्ति)
भिद्यते हृदय-ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥ (भाव)
अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादिनीम्॥ (प्रेम)

भाग. स्कंध. 1, अ. 2, श्लोक 16-22

हे शौनकादि ऋषियो! श्रद्धावान् पुरुष प्रथम पवित्र तीर्थ में वास करे, फिर महत्पुरुषों की सेवा-शुश्रूषा करे तो वासुदेव भगवान् की कथा में 'श्रद्धा' उदय होगी। तत्पश्चात् कृष्ण-कथा में रुचि उदय होगी, अर्थात् भगवत्-कथा सुन्दर लगने लगेगी। (श्रद्धा-साधुसंग-भजनक्रिया रुचि)

भगवान् श्रीकृष्ण के यश का 'श्रवण' और 'कीर्तन' ऐसा है जो कि हृदय को पवित्र बना देता है। इन दोनों, कथा-श्रवण और कीर्तन के, वश होकर जब श्रीहरि भक्त के हृदय-मन्दिर में आकर स्थित हो जाते हैं, तब भक्त की अन्तःस्थित वासनाओं को नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे सन्तों के नित्य-सुहृद् हैं। (भजनक्रिया-अनर्थनिवृत्ति)

जब श्रीभागवतशास्त्र और भक्ति-रस-पात्र भगवद्-भक्तों के निरन्तर सेवन से वासना-निवृत्ति हो जाती है अर्थात् नामापराध और सेवापराध नष्ट हो जाते हैं, तब विक्षेप दूर हो जाने पर अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण में निष्ठा होती है; एकाग्रचित्तता प्राप्त होती है। (निष्ठा)

वह चित्त की एकाग्रता रजोगुण-तमोगुण-काम-लोभादिकों को दूर कर मनकी वृत्तियों को सत्त्वगुण में स्थिर कर देती है। उसीका नाम है 'रुचि'—अर्थात्, 'त्रिभुवन का वैभव प्राप्त होने पर भी चित्त का चलायमान न होना' ऐसा स्वभाव हो जाता है। (रुचि)

इस प्रकार भगवद्-भजन द्वारा हृदय आनन्द से भर जाता है। संसार की समस्त कामादिक वासनाएँ मिट जाती हैं, तब भगवान्‌के लीला-गुणों का अपने-आप ही अनुभव होने लगता है। इसी को 'आसक्ति' कहते हैं। जैसे संसारी कहीं भी रहे, उसके हृदय में संकल्प-विकल्प उठते ही रहते हैं। (आसक्ति)

भक्त के हृदय में जीव के रक्षक भगवान् का साक्षात्कार होते ही, 'भाव' का उदय होता है। तब चित्-जड़ग्रन्थि, असम्भावना, विपरीत भावना आदि सारे दोष एवं कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं। जैसे सूर्य के अरुणोदय-काल में ही अन्धकार विलीन हो जाता है, फिर 'प्रेमाभक्ति' मिलती है। (भाव)

इसीसे बुद्धिमान् पुरुष नित्य-निरन्तर बड़े आनन्द से भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति 'प्रेमाभक्ति' करते हैं, यह प्रेमा-भक्ति साधन-काल और फल-काल दोनों में ही आनन्ददायिनी है। इसीसे उसको आह्लादिनी-शक्तिकी वृत्ति कहा है। (प्रेम)

श्रीभगवान् उद्धवजी से कहते हैं—

बाध्यमानोऽपि मद्‌भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते॥

भाग. स्कंध. 11, अ. 14, श्लोक 18

हे उद्धव! मेरा जो भक्त अभी जितेन्द्रिय नहीं हो सका है, संसार के विषय बार-बार उसे बाधा पहुँचाते हैं, अर्थात् अपनी ओर खींच लिया करते हैं, फिर भी वह क्षण-क्षण में बढ़ने वाली मेरी प्रगल्भा भक्तिके प्रभावसे प्रायः विषयोंसे पराजित नहीं होता।

यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्य-गाथा-श्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जन-सम्प्रयुक्तम्॥

भाग. स्कंध. 11, अ. 14, श्लोक 26

मेरी परमपावन लीला-कथा के श्रवण-कीर्तन से ज्यों-ज्यों चित्त का मैल धुलता जाता है, त्यों-त्यों उसे सूक्ष्म वस्तु के (वास्तविक वस्तु) लीला-माधुर्य एवं तत्त्व के दर्शन होने लगते हैं। जैसे अंजन के द्वारा नेत्रों का रोग दोष मिटने पर उनमें सूक्ष्म वस्तुओं के देखने की शक्ति आने लगती है।

2. स्वाभीष्ट-अनुकूल रहनी : भक्ति में हितकारी—

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥
तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम्।
हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम्॥
स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्।
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः॥
न तथास्य भवेत्क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद् यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥

भाग. स्कंध. 11, अ. 14, श्लोक 27-30

जो पुरुष निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है, और जो मेरा स्मरण करता है उसका चित्त मुझमें तल्लीन हो जाता है। इसलिए तुम स्वप्न-मनोरथ की तरह झूठे असद्-विषयों के ध्यान को छोड़, मनको मेरी लीलाके चिन्तन में लगा दो। संयमी पुरुष स्त्रियों और उनके प्रेमियों का सङ्ग दूर से ही छोड़कर पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर बड़ी सावधानीसे मेरा ही चिन्तन करे। याद रखो, स्त्री-सङ्ग से भी वैराग्य हो जाता है परन्तु स्त्री-सङ्गियों के सङ्ग से विषयों से वैराग्य होना कठिन ही है।

3. स्वाभीष्ट भाव प्राप्ति सम्बन्धी उपाय : वैधी साधन भक्ति—

श्रीउद्धवजीके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि—साधक भजनमें प्रवृत्त होता तो है पर उसकी भक्ति की वृत्तियाँ कुछ कालमें शिथिल सी हो जाती हैं। वह प्रेमलक्षणा भक्ति उत्तरोत्तर बढ़े, ऐसा उपाय पूछना चाहिए। श्यामसुन्दर तो अन्तरात्मा हैं, अतः वे स्वयं ही कहने लगे—

भक्तियोगः पुरैवक्तं प्रीयमाणाय तेऽनघ।
पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम्॥
श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम॥
आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥

मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम्।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम्॥
मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं मद्व्रतं तपः॥
एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्म-निवेदनम्।
मयि स जायते भक्तिः कोन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते॥

भा. स्कंध. 11, अ. 19 श्लोक 19-24

हे निष्पाप उद्धवजी, भक्तियोग का वर्णन मैं तुम्हें पूर्व सुना चुका हूँ; परन्तु उसमें तुम्हारी बहुत प्रीति है इसलिए मैं तुम्हें उत्तरोत्तर भक्ति के बढ़ने के श्रेष्ठ साधन बतलाता हूँ—

जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता है वह मेरी अमृतमयी कथा में श्रद्धा रखे। निरन्तर मेरे गुणों, लीलाओं और नामों का सङ्कीर्त्तन करे। मेरी पूजा में अत्यन्त निष्ठा रखे और स्तोत्रों के द्वारा सदा मेरी स्तुति करे। (श्रवण कीर्तन, पादसेवन)

मेरी सेवा-पूजा में प्रेम रखे और दक्षिण भाग से साष्टाङ्ग लोटकर प्रणाम करे। मेरे भक्तों की पूजा मेरी पूजा से अधिक करे और समस्त प्राणियों में मुझे ही देखे। (अर्चन, स्मरण, वंदन)

अपने प्रत्येक अङ्ग की जो कुछ शारीरिक क्रिया करे, उन्हें मेरे ही लिए करे। वाणी से मेरे ही गुण का गान करे और अपना मन भी मुझे ही अर्पित कर दे तथा सारी कामनाएँ छोड़ दे। (दास्य)

मेरे लिए धन, भोग और प्राप्त सुख का भी परित्याग कर दे और जो कुछ यज्ञ, दान, हवन, जप, व्रत और तप किया जाय, वह सब मेरे ही लिए करे। (सख्य, आत्मनिवेदन)

हे उद्धव, जो साधक इन धर्मों का पालन करते हैं और मेरे प्रति आत्म-निवेदन कर देते हैं उनके हृदय-मन्दिर में प्रेममयी भक्ति का उदय होता है। जिसे प्रेमलक्षणाभक्ति प्राप्त हो गयी, उसके लिए किस दूसरी वस्तु का प्राप्त होना शेष रह जाता है? अर्थात्, फिर कोई प्राप्त करने योग्य वस्तु उसके लिए शेष नहीं रहती।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

भाग. स्कंध. 11, अ. 20, श्लोक 17

यह मनुष्य-देह सब देहों में उत्कृष्ट है। जब ब्रह्मा ने जीव जातियों को जन्मदिया, तब मनुष्य-देह देखकर उन्हें परमोल्लास हुआ कि– यह देह भगवत्-प्राप्ति का मुख्य सोपान होगा। किसी पुण्यकर्मसे सुलभ हो गया है, यह अत्यन्त दुर्लभ है; जब अनेक कर्मयोनियों को जीव भोग लेता है और श्रीहरि जीव को अपने सान्निध्य में रखना चाहते हैं, तब मनुष्य-योनि दान करते हैं। यह मनुष्य-शरीर भव-समुद्र के तरण के लिए सुदृढ़ नौका है। —साधक सन्देह करता है कि क्या नौका से ही सब कार्य चल सकेगा? मल्लाह भी तो चाहिए। श्रीभगवान् कहते हैं—श्रीगुरु मल्लाह हैं। पुनः कहते हैं—नौका भी दृढ़ हुई और मल्लाह भी हुआ पर यदि वायु प्रतिकूल हुई तो नाव किस तरह पार लगेगी? श्रीभगवान् आश्वासन देते हैं कि जिसने मेरा आराधन किया, उसके सब प्रतिबन्ध मैं दूर कर देता हूँ। अर्थात् मैं उस भक्त के अनुकूल हो जाता हूँ। इतनी सुविधा प्राप्त होने पर भी जो व्यक्ति इस शरीर के द्वारा संसार-सागर को पार नहीं कर पाता, वह अपने हाथ ही अपनी आत्मा का हनन कर रहा है—अर्थात् एक, आत्मघाती को जो दोष होता है, उसी प्रत्यवाय का वह भागी होता है।

4. स्वाभीष्ट (प्रेमाभक्ति में) अविरुद्ध कार्य—

ऐसा विचार करते हुए साधक से श्रीभगवान् कहते हैं—

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत्। जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्मचोदनाम्॥
यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित्। मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम्॥
अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः। असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक्॥
जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु। उदासीनः समं पश्यन् सर्वेष्वर्थमिवात्मनः॥

भाग. स्कंध. 11, अ. 10, श्लोक 4-7

जो पुरुष मेरी शरणमें आगया है उसे अन्तर्मुख करने वाले निष्काम अथवा नित्यकर्म ही करने चाहिये, उन सकाम कर्मों का त्याग बिल्कुल कर देना चाहिये, जो बहिर्मुख बनाने वाले हों। (दुस्संग त्याग)

जब आत्मज्ञानकी उत्कट-इच्छा जाग उठे तब तो कर्म-सम्बन्धी विधि-विधानों का भी आदर नहीं करना चाहिए। हां! अहिंसा आदि नियमों का तो आदरपूर्वक सेवन करना चाहिए, परन्तु शौच, पवित्रता आदि नियमों का पालन, शक्ति के अनुसार, आत्मज्ञान के विरोधी न होने पर ही करना चाहिए। (निष्कामता)

मेरे लीलागुणों को जाननेवाले श्रीगुरुदेव को मेरा ही स्वरूप समझकर उनकी शान्त-स्वभाव से सेवा करनी चाहिए। (गुरु उपसत्ति)

साधक को अभिमान नहीं करना चाहिए कि-मैं तो भजन में खूब प्रवृत्त हो गया हूँ। वह कभी किसी से डाह ईर्ष्या न करे। किसी का बुरा न सोचे। वह प्रत्येक भजनीय कार्य में कुशल रहे। आलस्य छू न जावे। उसे कहीं भी बन्धु-बान्धवों में ममता न हो। कोई कार्य हड़बड़ाहट में न करे। उपासना सावधानी से करे। वह परमार्थ-सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा बनाये रक्खे। किसी के गुणों में दोष न निकाले और व्यर्थ की बातें न करे। (निर्दोषता)

जिज्ञासु का परमधन 'आत्मज्ञान' है। अतः स्त्री, पुत्र, घर, खेत, स्वजन, धनादिकों में उदासीन होकर रहे। जैसे धन जबतक अपने हाथ रहा तबतक अपना है; अन्य के हाथ जाने पर पराया हो गया; इसी प्रकार जबतक आत्मा इस शरीरमें है तबतक शरीर अपना है, पश्चात् पराया है।

यही धर्मोपदेश श्रीदेवर्षि नारद श्रीयुधिष्ठिर महाराज से कहते हैं—

तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित्।
सन्तुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः॥

भागवत स्कंध. 7, अ. 15, श्लोक 11

इसलिए धर्मज्ञ मनुष्य को यही उचित है कि— प्रतिदिन प्रारब्ध के द्वारा प्राप्त मुनिजनोचित हविष्यान्न से ही अपने नित्य और नैमित्तिक कर्म करे तथा उसीसे सन्तुष्ट रहे। (संतोष)

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम्।
कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः॥

भा. स्कंध. 7, अ. 15, श्लोक 16

जो सुख अपनी आत्मा में नित्य रमण करने वाले निष्क्रिय सन्तोषी पुरुष को मिलता है, वह उस मनुष्य को भला कैसे मिल सकता है जो कामना और लोभ से धन के लिए 'हाय-हाय' करता हुआ इधर-उधर दौड़ता-फिरता है? (स्वात्मारामता)

सन्तुष्टः के न वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा।
ओपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद् गृहपालायते जनः॥

भाग. स्कंध. 7, अ. 15, श्लोक 18

हे युधिष्ठिर, न जाने क्यों मनुष्य केवल जलमात्र से ही सन्तुष्ट रहकर अपने जीवन का निर्वाह नहीं कर लेता। रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के फेर में पड़कर, यह बेचारा घर की चौकसी करने वाले कुत्ते के समान हो जाता है। (संतोष)

कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात्।
जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः॥

भाग. स्कंध. 7, अ. 15, श्लोक 20

भूख और प्यास मिट जाने पर खाने-पीने की कामना का अन्त हो जाता है। कामना की पूर्ति होने पर क्रोध भी शान्त हो जाता है; परन्तु यदि मनुष्य पृथ्वी की समस्त दिशाओं को जीत ले तब भी 'लोभ' का अन्त नहीं होता। (निर्लोभता)

5. स्वाभीष्ट विरुद्ध त्याग : भक्तिविरोधी वृत्तियोंके जीतनेके उपाय —

देवर्षि श्रीनारदजी से युधिष्ठिर महाराज प्रार्थना करते हैं कि भगवन्! साधक साधन अवश्य करता है परन्तु ये 'षड्ऊर्मियां' इतनी प्रबल हैं कि, ये मनको स्थिर नहीं रहने देतीं। अतः इनको जीतने का कोई उपाय बताइये। श्रीनारद जी कहते हैं—

असङ्कल्पाज्जयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात्। अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्॥
आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया। योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया॥
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना। आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्व निषेवया॥
रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वंचोपशमेन च। एतत्सर्वगुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥

भाग. स्कंध. 7, अ. 15, श्लोक 22-25

सङ्कल्पों के परित्याग से 'काम' पर विजय प्राप्त करे—अर्थात् जब चित्त में किसी प्रकार की विषय-वासना उदय होने ही न देगा, तब कामना पर विजय प्राप्त हो जायेगी।

कामनाओं के त्यागसे क्रोध पर विजय प्राप्त करे—अर्थात् जब कोई प्रबल-वासना चित्त पर असर करती है, उसकी पूर्ति न होने पर वही काम 'क्रोध' में परिणत हो जाता है। अतः मनको वासना के अधीन होने ही न दे। तो क्रोध उत्पन्न नहीं होगा।

"धन ही अनर्थ का मूल है", अर्थात् स्त्री, द्यूत, आसवादि पैसा होने से ही जीव का पीछा करते हैं— ऐसा विचार करके जितने धन से व्यवहार मात्र चल

जाय, उतना ही सम्पर्क रखें तो 'लोभ' पर विजय प्राप्त करे। क्योंकि धन से ममता का त्याग ही 'त्याग' है, धन का स्वरूपतः त्याग अनिवार्य नहीं।

'तात्त्विक विचार', (आन्वीक्षिकी) से भय का कोई स्थान है ही नहीं। ऐसी मन में विवेचना करे। इस से 'भय' को जीत लेना चाहिए।

आध्यात्मिक विचार से—अर्थात्, जो कुछ मायिक दृश्य वस्तु है सब परिणामी मात्र है; बिना श्रीहरि के आराधन के कोई भी वस्तु 'सत्य' नहीं है—ऐसा विचार करने से 'मोह' पर विजय प्राप्त करें।

ज्ञानपूर्वक विचार करने से 'शोक' भी जीतने में आ जाता है। और सन्तों के आचरण देखने से, अर्थात् वैष्णवगण जिस सदाचार से रहते हैं, उससे 'दम्भ' भी जीतने में आ जाता है।

चित्त-वृत्तियों के निरोध से अन्तरायों को जीते— अर्थात् भजन के 'विघ्नों' को साधक 'मौन' के द्वारा जीते।

"प्रारब्ध-फल अवश्य भोगना पड़ेगा, कौन किसको दु:ख देने वाला है?" ऐसा विचार करके शरीर और प्राणों को निश्चेष्ट करने से 'हिंसा' पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

'आधिभौतिक दु:ख' को दया के द्वारा, 'आधिदैविक वेदना' को समाधि के द्वारा और 'आध्यात्मिक दु:ख' को योग-बल से एवं 'निद्रा' को सात्त्विक भोजन आदि के सेवन से जीत लेना चाहिए।

सत्त्वगुण के द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण पर, पुनः 'उपरति' (वैराग्य) के द्वारा सत्त्वगुण पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

'पाप वृत्तियों' को श्रीगुरुदेव की भक्ति के द्वारा जीते। साधक इन सब षड्ऊर्मियों पर, सब दोषों पर श्रीगुरु उपदेश से सुगमता से विजय प्राप्त कर सकता है। क्योंकि शिष्य जब-जब कुपथ पर जायेगा, श्रीगुरुदेव तब-तब ही उपदेशामृत द्वारा उसे सुगम मार्ग पर ले आयेंगे।

इसलिए श्रीब्रह्माजी ने श्रीदेवर्षि नारद से कहा है—

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
तैः दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमितिधीः श्वशृगालभक्ष्ये॥

भाग. स्कंध. 2, अ. 7, श्लोक 42

जो निष्कपट भाव से अपने सर्वस्व को और अपने आपको श्रीहरि और गुरु के चरण-कमलों में निछावर कर देते हैं, उनपर वे अनन्त भगवान् स्वयं

ही अपनी ओर से दया करते हैं। और तब वे साधक उनकी दया के पात्र बनकर उनकी दुस्तर माया का स्वरूप जान लेते हैं और उसके पार जा पाते हैं। अन्यथा श्वान और शृगाल-भक्ष्य इस देह-गेह से 'मैं' और 'मेरी ममता' दूर नहीं होती।

माया संतरण के उपाय : भागवत-धर्म—

जब 'माया के संतरण के उपायों' के विषय में श्रीनिमि महाराज ने पूछा तो श्रीनवयोगेश्वरों में 'प्रबुद्ध' योगेश्वर ने बतलाया—

एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम्।
स तुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम्॥

भाग. स्कंध. 11, अ. 3, श्लोक 30

जैसे 'संसारी' जन सुख-प्राप्ति के लिए कर्म करते हैं फिर भी दुःखों की निवृत्ति नहीं होती; इसी प्रकार परलोक-स्वर्गादि सुख भी ऐसे ही नाशवान् हैं, वहाँ भी ईर्ष्या, द्वेष, भय, पतन आदि का क्रम लगा हुआ है। अतः वहां भी सुख नहीं है। अतः उनके लिए लालायित मत बनो।

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्। शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्॥
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः। अमायानुवृत्त्या यैस्तुष्येदामात्मदो हरिः॥
सर्वतो मनसो सङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु। दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥
शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः॥
सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्। विविक्त-चीर-वसनं सन्तोषं येन केनचित्॥
श्रद्धां भागवते शास्त्रे निन्दामन्यत्र चापि हि। मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥
श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः। जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्॥

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्। परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥
परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः। मिथोरतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्तया सञ्जातया भक्त्या विभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्। हसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजम्। भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम्॥

भाग. स्कंध. 11 अ., 3, श्लोक 21-33

(i) श्रद्धा—

"जिस प्रकार कर्मजित् लोक (यह जगत्)- क्षीण होते हैं उसी प्रकार पुण्योपार्जित लोक (स्वर्गादि) भी क्षीण होते हैं," ऐसा विचार करता हुआ साधक जब भगवत्-आज्ञा का स्मरण करेगा तभी उसे सुख प्राप्त होगा।

न चेन्द्रस्य सुखं किञ्चिन्न सुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः॥

प.पु. भा. महा. अ. 4-75

(वास्तविक सुख न इन्द्र-पद में है, न ही चक्रवर्तित्व में। सुख तो केवल विरक्ति में एकान्त-जीवी महापुरुषों के पास ही है।)

(ii) साधु (गुरु) संग—

'वह नित्य सुख कैसे प्राप्त हो?'—यह जिज्ञासा होगी, तब एक जीव श्रीगुरु की शरणागति प्राप्त होने का अधिकारी होगा। जैसे 'हम रोगी हैं' यह जानने पर ही 'यह रोग कैसे दूर होगा'? ऐसे विचार से रोगी सद्वैद्य के समीप जायेगा, इसी प्रकार परम कल्याण के जिज्ञासु को श्रीगुरुदेव की शरण लेनी चाहिए। श्रीगुरु ऐसे हों जो शब्दब्रह्म-(शास्त्र के मर्म) के ज्ञाता हों, अन्यथा शिष्य के सन्देह-निवारण करने में असमर्थ रहेंगे। साथ में परब्रह्म-भगवत्-तत्त्व के अनुभवी उपासक भी हों, अन्यथा उपासना की सम्प्रदायानुकूल शिक्षा नहीं बतला सकेंगे। अर्थात् गुरु को श्रीहरि की उपासना में लगे हुए होना चाहिए।

यदि कोई कहे कि— श्रीगुरुशरणागति तो हमने ग्रहण करली; —तो इस पर कहते हैं- वह तो ऐसे ही हुआ जैसे सद्वैद्य के पास जाकर दवा ले आना—एक रोगी को कुछ दिन दवा खानी होगी। श्रीगुरु-सेवा से ही श्रीहरि प्रसन्न होते हैं।

(iii) भजन रुचि—

जिज्ञासु को चाहिए कि श्रीगुरुदेव को ही अपना परम प्रियतम आत्मा, इष्टदेव माने, उनकी निष्कपट भाव से सेवा करे और उनके पास रहकर भागवतधर्म की—(भगवान् को प्राप्त कराने वाले साधनों की), क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे।

(क) असत् त्याग—

फिर केवल दवा खाने से ही कार्य नहीं चलेगा, साथ में पथ्य भी करना होगा। इसी प्रकार साधक को प्रथम देह-गेह से अनासक्त होना होगा; भले ही स्वरूपतः उनको त्याग न भी करे। क्योंकि कहा है— "अनन्यममता विष्णोः ममता प्रेमसङ्गता। (नारद पञ्चरात्रे) प्रेमसहित अनन्य ममत्व श्रीहरि में होना परमावश्यक है। फिर 'शून्य' बनकर ही न बैठा रहे। भगवान् की गुण-लीला एवं भगवत्-भक्तों में प्रेम करना सीखे।

(ख) सत् ग्रहण—

इसके पश्चात् प्राणिमात्र के प्रति दया, मैत्री और विनय की निष्कपट भाव से शिक्षा ग्रहण करे।

(ग) सदाचार—

फिर मिट्टी-जलादि से देह की बाह्य शुद्धि करे। फोटो में (जैसे कैमरा में) बाहर का ही चित्र भीतर के यन्त्रों में उतारा जाता है। ऐसे ही जो कुछ हम बाह्यकर्म करते हैं उसी का हमारे मन पर अवश्य चित्रण (प्रतिबिम्ब) होता है—फिर अन्तःकरण की भीतर की पवित्रता, स्वधर्मानुष्ठान, सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय—(वैष्णव ग्रन्थों का पठन), सरलता, ब्रह्मचर्य, हिंसा का त्याग तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में हर्ष-विषाद से रहित बने रहना- इन सब गुणों को सीखे।

(घ) समभाव—

सर्वत्र जीव-मात्र में अपने इष्टदेव को देखे। एकान्त सेवन तथा 'जो कुछ है सब प्रभु का है' ऐसा भाव रखे। मोटा-छोटा जो कुछ प्रारब्ध के अनुसार मिल जाय, उसीमें सन्तोष करना सीखे।

भगवत्-प्रतिपादित शास्त्रों में श्रद्धा रखना और दूसरे किसी भी शास्त्र तथा मार्ग की निन्दा न करना भी सीखे।

(iv) अनर्थ निवृत्ति—

इसके विपरीत ही कुपथ्य है; क्योंकि जब अन्य धर्म की निन्दा करेगा तो उससे अपराध का भागी होगा। यही अनर्थ उसके भजन में, अग्रगामी होने में, विघ्न हो जाते हैं।

प्राणायाम के द्वारा मन का, मौन के द्वारा वाणी का, वासनाहीनता के अभ्यास से कर्मों का संयम करना सीखे। सत्य बोलना, शम–(बुद्धि का श्रीहरि की ओर लग जाना), दम–(इन्द्रियों का दमन, यानी मन को कहीं बाहर न जाने देना) सीखे।

(v) भजन-क्रिया—

क्योंकि—मनका तो स्वभाव है कि इसे कोई कार्य चाहिये। मन कभी भी कर्म विहीन नहीं रह सकता! इसके समाधान में श्रीप्रबुद्धयोगेश्वर कहते हैं—

भगवान् की लीलाएँ तो अनन्त हैं, अद्भुत हैं, उनके जन्म-गुण-कर्म दिव्य हैं, उन्हीं का श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना तथा शरीर से जितनी भी चेष्टाएँ हों, उन सबको भगवान् के लिए ही करना सीखे।

(vi) निष्ठा—

विष्णु-प्रीत्यर्थ 'यज्ञ', वैष्णव सम्प्रदानक 'दान', एकादशी व्रत आदि 'तप', विष्णुमन्त्र 'जप', परमार्थ-प्रतिपादित 'वृत्ति' (आजीविका) एवं सदाचार का पालन करता हुए स्त्री, पुत्र, घर तथा अपने जीवन-प्राण आदि जो कुछ अपने को प्रिय लगता हो—सब का सब श्रीभगवान् के चरणों में निवेदन कर दे। उन्हें सौंप देना सीखे।

इस प्रकार भक्ति साधन करते-करते जब उसके लिए श्रीकृष्ण ही "नाथ" सर्वस्व हो जायेंगे। तब भी श्रीमूर्ति में ईश्वर-बुद्धि रख, जीवमात्र में 'भगवत्-भाव' से सेवा करता हुआ विशेषत: भगवत्-प्रेमी सन्तों की सेवा करना सीखे।

(vii) (मुख्य) रुचि—

भगवत्-भागवतों की यह सेवा धीरे-धीरे जब भगवद्गुणों में 'रुचि' उदय कर देगी। तब वह सजातीय रसिक भक्तों के साथ भगवान् के परमपावन-यश के सम्बन्ध में एक-दूसरे से बातचीत करेगा तथा इसी प्रकार के साधकों से प्रेम करेगा। उन लीला-चरित्रों को ही सुनकर आपस में सन्तुष्ट रहेगा। प्रपञ्च से निवृत्त होकर आपस में ही आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव करेगा।

(viii) आसक्ति—

फिर भजन में इतना "आसक्त" हो जायगा कि यदि कोई संसार की चर्चा भी ले बैठे तो यही कहेगा कि- कुछ श्रीकृष्ण कथा ही कहो। जैसे श्रीविदुरजी ने कहा कि—

वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः।

भाग. स्कंध. 3 अ. 1 श्लोक 45

इधर-उधर की चर्चा सुनकर कान मैले हो रहे हैं। हे सखे! अब तो कुछ कृष्ण-चर्चा ही कीजिए। श्रीकृष्ण तो राशि-राशि पापों को दूर करने वाले हैं अतः अब उन्हीं का स्मरण करें और एक-दूसरे को स्मरण करावें।

(ix) भाव—

इस प्रकार 'साधन-भक्ति' के द्वारा जब प्रेमलक्षणा भक्ति की पूर्वभूमिका 'भावभक्ति' उदय हो जायेगी, उस समय (भावोदय अवस्था में) तब प्रेमोद्रेक से तनु पुलकित हो जायगा। तब मन की बड़ी विलक्षण स्थिति हो जायगी। कभी तो इस प्रकार की चिन्ता करने लगेगा कि— अब तक वे प्रभु नहीं मिले, हाय! अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे पूछूँ? कौन मुझे उनकी प्राप्ति करायेगा? ऐसा सोचते-सोचते वह रोने लगेगा। कभी भगवान् की लीला-स्फूर्ति होने पर हँसने लगेगा, कभी-कभी उनके प्रेम और दर्शन की स्फूर्ति की अनुभूति में आनन्द-मग्न होकर नाचने लगेगा। कभी भावावेश में लोकातीत होकर भगवान् के साथ बातचीत करने लगेगा। कभी मानो उन्हें सुना रहा हो, इस प्रकार गाने लगेगा। कभी उन्हें पास न पाकर ढूँढ़ने लगेगा। कभी-कभी उनसे मिलन प्राप्त कर श्रीहरि के सान्निध्य में परमशान्ति का अनुभव करता हुआ चुप हो जायगा।

(x) प्रेम—

जो भक्त इस प्रकार भागवतधर्मों की शिक्षा ग्रहण करता है उसे प्रेम-भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। वह नारायण-परायण होकर उस माया को अनायास ही पारकर जाता है। अन्यथा इस माया के पंजे से निकलना बहुत ही कठिन होता है।

वैधी साधन के कुछ प्रसिद्ध अंग (रागानुगा में भी ग्राह्य) —

श्रीभगवान् उद्धवजी को बतलाते हैं कि विधिमार्गीभक्तों की तुलना में रागानुगामार्गीय भक्त मेरी दृष्टि में श्रेष्ठ हैं। जिनके ताप-पुण्ड्र- नाम-मन्त्र-याग ये पाँच संस्कार विराजमान हैं, वे वैष्णव कहलाते हैं। उनके लिए श्रीभगवान् कहते हैं कि—

ज्ञात्वा ज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमाः मताः॥

भाग. स्कं. 11, अ. 11, श्लोक 33

मैं कौन हूँ? कितना बड़ा हूँ? कैसा हूँ? इन बातों को कोई जाने चाहे न जाने; किन्तु जो अनन्यभाव से—अर्थात् "व्रजराजनन्दन मेरे हैं"—यह जानकर भजन करता है, वह मेरे विचार से परम भक्त है।

मल्लिङ्गमद्भक्तजन-दर्शनस्पर्शनार्चनम्। परिचर्या स्तुतिःप्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम्॥
मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव। सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम्॥
मज्जन्म-कर्म-कथनं मम पर्वानुमोदनम्। गीत-ताण्डव-वादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः॥
यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु। वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम्॥
ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः। उद्यानोपवनाक्रीड-पुरमन्दिर-कर्मणि॥
सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेक-मण्डल-वर्तनैः। गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया॥
अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम्। अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम्॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः। तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते॥
सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम्। भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे॥
सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम्। आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वङ्ग यवसादिना॥
वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया। वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः॥
स्थण्डिले मन्त्रहृदयै-र्भोगैरात्मानमात्मनि। क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम्॥

भाग. स्कंध. 11, अ. 11, श्लोक 34-45

मेरी श्रीमूर्ति तथा मेरे भक्तों का दर्शन करे, शास्त्रीय विधान से पूजा करता हुआ मेरे तथा श्रीगुरु-आचार्यों के श्रीचरणों का स्पर्श करे। फिर समयानुकूल सेवा करके स्तुति करे। फिर भक्ति-भाव-सहित गुणावलियों का लीला-गान करे, तत्पश्चात् नाम-कीर्तन करे।

मेरी कथाओं के श्रवण में श्रद्धा रखे। मेरा निरन्तर ध्यान करे। जो कुछ मिले उसमें सन्तोष रखे। "मैं प्रभु का दास हूँ"— यह अभिमान रखता हुआ सब कुछ आत्मा-आत्मीय मुझे अर्पण कर दे।

मेरी जन्मादि बाल-लीला-चरित्रों को भक्तों को सुनावे, मेरे जन्माष्टमी आदि पर्वों को मनावे, मेरे श्रीमन्दिरों में भक्तमण्डलियों के सहित कीर्तन-नृत्य-बाजे प्रभृति बजाकर विशेष उत्सवों को करे।

वर्षोत्सवों में जैसे रथयात्रा, स्नानयात्रादि उत्सवों में विशेष भोग-राग-करे, वेद-मन्त्र के द्वारा तथा यन्त्रादि स्थापन करे श्रीगुरु द्वारा वैष्णवी दीक्षा (यानी आराधना का नियम) ग्रहण करे। विष्णुयामल में कहा है—

(i) दीक्षा—

दीव्यद् ज्ञानं यतो दद्यात्कुर्यात्पापस्य संक्षयम्।
तस्मात्दीक्षेति सा प्रोक्ता लौकिकी वैदिकी द्विधा॥

जिसके द्वारा 'मैं प्रभु का हूँ,' यह ज्ञान उदय होवे, जिस वैष्णवमन्त्र के द्वारा जितने संचित कर्म हैं— वे नष्ट हो जायें, अर्थात् जो पापों का क्षय करे, उसे "दीक्षा" कहते हैं। वह दो प्रकार की है। प्रथम तो "लौकिकी वैष्णवी" दीक्षा दूसरी वैदिकी दीक्षा। लौकिकी का लक्षण है—

ये कण्ठलग्नतुलसी नलिनाक्षमाला ये वा स्वबाहुपरिचिह्नितशंखचक्राः।
ये वा ललाटपटले लसदूर्ध्वपुण्ड्राः ते वैष्णवाः भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥

—पद्म पुराणे

लोक-व्यवहार के दिखावे को माला पहनना शीतल या तप्त मुद्राओं (शंख, चक्रादि), तिलकों को धारण करना, जिससे 'यह वैष्णव है' ज्ञान हो जाय। जैसे—वर्दी से सिपाही का ज्ञान होता है इसे ही 'लौकिकी' दीक्षा कहते हैं।

दूसरी वैदिकी दीक्षा है।—अर्थात् नाद और विन्दु-परम्परा-बद्ध श्रीगुरु परंपरा में स्थित गुरु द्वारा मन्त्र-ग्रहण करना दीक्षा में श्रीहरि को वशीकरण करने की शक्ति है, उससे द्विजत्व-सिद्धि हो जाती है। शास्त्र कहता है—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।

—मनुस्मृति

फिर श्रीमन्दिर में जो प्रभु विराजमान हैं वह साक्षात् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ही हैं— यह विश्वास उदय करे। श्रीप्रभु के लिए, जिसमें सेवा प्रवाह सम्यक् रूप से चलता रहे— इसलिए गाँव, जमीन, बाग-बगीचा लगावें। स्वयं उसके लिए परिश्रम करे।

स्वयं भी सेवक की भाँति श्रद्धाभक्ति के साथ निष्कपट भाव से मेरे मन्दिरों में सेवाशुश्रूषा करे। उन्हें झाड़ू से बुहारे, लीपे, पोते, छिड़काव करे और तरह-तरह के चौक पूरे।

अभिमान न करे, दम्भ न करे, साथ ही अपने शुभ कर्मों का ढिंढोरा न पीटे। हे प्रिय उद्धव! मेरे चढ़ावे को अपने काम में लाने की बात तो दूर रही, मुझे समर्पित दीपक के प्रकाश में भी अपना काम न करे। किसी दूसरे देवता को चढ़ायी हुई वस्तु न चढ़ावे।

संसार में जो वस्तु अपने को सबसे प्रिय, सबसे अभीष्ट जान पड़े, वह मुझे समर्पित कर दे। ऐसा करने से वह वस्तु अनन्त फल देने वाली हो जाती है।

(ii) भगवत् पूजन के स्थान—

सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और समस्त भद्रपुरुष—ये सब मेरी पूजा के स्थान हैं।

सूर्य में वेद मन्त्र द्वारा पूजे। इसी प्रकार श्रीविग्रह में मेरी पूजा करे; अर्थात् गायत्री मन्त्र से अर्घ्य देकर हवन द्वारा अग्नि में, आतिथ्य द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण में, हरी-हरी घास देकर गौ में मेरी पूजा करे। वैष्णव में भाई-बन्धु के समान सत्कार करके मेरी पूजा करे। इसी प्रकार निरन्तर ध्यान में लगे रहकर हृदयाकाश में मेरी पूजा करे। 'मुख्य प्राण' समझकर, वायु में और जल-पुष्पादि द्वारा अर्घ्य देकर तीर्थ में मेरी आराधना करे।

स्थण्डिल अर्थात् वेदों में मन्त्रन्यास के द्वारा; उपयुक्त भोग द्वारा आत्मा में, और समदृष्टि द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों में मेरी आराधना करनी चाहिए। क्योंकि मैं ही सभी में क्षेत्रज्ञ आत्मा रूप से स्थित हूँ। भक्तिपूर्वक निष्कपट भाव से परमपिता गुरुरूप मुझ क्षेत्रज्ञ परमात्मा का पूजन-सामग्रियों द्वारा श्रीमूर्ति में, वेदियों में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, हृदय में अथवा ब्राह्मणों में—इच्छानुसार—आराधना करे।

(iii) वैधी पूजन प्रकार—

पूर्वस्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये।
उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना॥
सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितीनि मे।
पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक् सङ्कल्पः कर्मपावनीम्॥

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥
भाग. स्कं. 11, अ. 27, श्लोक 9-12

उपासक को चाहिए कि प्रातःकाल दन्तधावन करके पहले शरीर-शुद्धि के लिए स्नान करे। फिर वैदिक और तांत्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों से मृत्तिका-लेपन कर पुनः स्नान करे।

उसके बाद मेरी आराधना के निमित्त सङ्कल्प करे। इसके पूर्व वेदोक्त सन्ध्यावन्दनादि नित्य-कर्म करके वैदिक-तान्त्रिक विधि से मेरी पूजा करे। जो कर्म-बन्धनों को छुड़ाने वाली है।

शैली, दारुमयी, लौही, चन्दनादि द्वारा लिखी हुई, चित्रमयी, बालुकामयी, मन द्वारा भावना की हुई, एवं मणिमयी आठ प्रकार की श्रीमूर्तियों में, जो कि पूजने में मनभायी हो, उसे वेद-मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठित कराकर मेरा पूजन करे।

शुचिः सम्भृत-सम्भारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः।
आसीनः प्रागुदग्वार्चेदर्चायामथ सम्मुखः॥
कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत्।
कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत्॥
भाग. स्कं. 11, अ. 27, श्लोक 19-20

उपासक पहले पूजा की सामग्री इकट्ठी कर ले। फिर पूर्व की ओर अग्र भाग वाले कुशासन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके अथवा यदि प्रतिमा अचल हो तो सम्मुख ही बैठकर पूजाकार्य आरम्भ करे।

पहिले विधिपूर्वक अङ्गन्यास और करन्यास करले। फिर श्रीमूर्ति में मन्त्रन्यास करे। और हाथ से प्रतिमा पर से पूर्वसमर्पित सामग्री हटाकर उसे पोंछ दे। इसके बाद जल-भरे कलश और प्रोक्षणपात्र आदि की पूजा गन्ध-पुष्पादि से करे।

पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान् प्रकल्पयेत्। धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम॥
पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्। उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये॥
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदा सीषुधनुर्हलान्। मुशलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत्॥
नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च। महाबलं बलं चैव कमुदं कुमुदेक्षणम्॥
दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान्।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः॥
चन्दनोशीर कर्पूर कुङ्कुमागुरुवासितैः। सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति॥
स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया। पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः॥

वस्त्रोपवीताभरण-पत्र-स्त्रग्गन्ध-लेपनैः। अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम्॥
पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान्। धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः॥
गुड-पायस-सर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान्। संयाव-दधिसूपाँश्च नैवेद्यं परिकल्पयेत्॥

भाग.स्कं. 11, अ. 27, श्लोक 25 से 34

मेरे सिंहासन के चारों कोनों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य ये चार पाये (पैर) हैं, इस प्रकार भावना करे। सत्व, तम, रज रूप तीन पटरियों की बनी हुई पीठ है। उस पर विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—ये नव शक्तियाँ विराजमान हैं।

उस आसन पर एक अष्टदल कमल है, उसकी कर्णिका अत्यन्त प्रकाशमान है और पीली-पीली केसरिकाओं की छटा निराली ही है। आसन के सम्बन्ध में ऐसी भावना करे। फिर पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य आदि उपचार प्रस्तुत करे। तदनन्तर भोग और मोक्ष की सिद्धिके लिए वैदिक और तान्त्रिक विधिसे पूजा करे।

सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूसल—इन आठ आयुधों की पूजा आठ दिशाओं में करे। और कौस्तुभमणि, वैजयन्तीमाला, श्रीवत्स-चिह्न आदि का वक्षःस्थल पर ध्यान कर पूजा करे।

नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण—इन आठ पार्षदोंकी आठ-दिशाओं में; गरुड़ की सामने; दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन की चारों कोनों में स्थापना करके पूजन करे। बायीं ओर श्रीगुरुदेव की और यथाक्रम पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि आठ-लोकपालों की स्थापना करके प्रोक्षण, अर्घ्यदान आदि क्रम से उनकी भी पूजा करनी चाहिए।

यदि सामर्थ्यवान् हो तो प्रतिदिन चन्दन, खस, कर्पूर, केसर, अगरजा आदि के सुवासित जल से मुझे स्नान कराये, और उस समय सुवर्णधर्मानुवाक 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' इत्यादि महापुरुषविद्या, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि पुरुषसूक्त और 'इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्तः' इत्यादि राजनादि मन्त्रोक्त साम-गायन का पाठ भी करता रहे।

मेरा भक्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, तुलसी-पत्र, माला, गन्ध और चन्दनादि से प्रेमपूर्वक यथावत् मेरा शृङ्गार करे।

उपासक श्रद्धा के साथ मुझे पाद्य, आचमन, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि सामग्रियाँ समर्पित करे।

यदि हो सके तो गुड़, खीर, घृत, पूड़ी, पूए, लड्डू, हलवा, दही, दाल आदि विविध व्यञ्जनों का नैवेद्य लगावे।

(iv) हवन-विधि (नैमित्तिक) —

विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः। अग्निमाधाय परितः समूहेत् पाणिनोदितम्॥

भाग.स्कं. 11, अ. 27, श्लोक 36

पूजा के बाद शास्त्रोक्त विधि से बने हुए कुण्ड में अग्नि की स्थापना करे। वह कुण्ड मेखला-गर्त-वेदी से शोभायमान हो।

जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः।
धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः॥
अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत्।
मूलमन्त्रं जपेद् ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम्॥
दत्वाऽऽचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत्।
मुखवासं सुरभिमत् ताम्बूलाद्यमथार्हयेत्॥
उपगायन् गृणन् नृत्यन् कर्माण्यभिनयन् मम।
मत्कथाः श्रावयन् छृण्वन् मुहूर्त्तक्षणिको भवेत्॥
स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि।
स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत्॥
शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम्।
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात्॥

भाग.स्कं. 11, अ. 27, श्लोक 41 से 46

इसके बाद अपने इष्ट मन्त्र से अथवा पुरुषसूक्त के सोलह मन्त्रों से हवन करे। साधक को चाहिए कि धर्मादि आवरण देवताओं के निमित्त भी विधिपूर्वक मन्त्रों से आहुति दानकर 'स्विष्टकृत्' आहुति भी दे।

इस प्रकार अग्नि में अन्तर्यामी रूप से स्थित श्रीभगवान् की पूजा करके उन्हें नमस्कार करे। फिर नन्द-सुनन्दादि पार्षदों को आठों दिशाओं में हवन कर्माङ्ग बलि दे। तदनन्तर प्रतिमा के सन्मुख बैठकर परब्रह्म-स्वरूप भगवान् नारायण का स्मरण करे। और भगवत्-स्वरूप मूल मन्त्र 'ॐ नमोनारायणाय' का जप करे।

इसके बाद भगवान् को आचमन करावे और उनका प्रसाद विष्वक्सेन जी को निवेदन करे। तत् पश्चात् अपने इष्टदेव को ताम्बूल अर्पित कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे।

मेरी लीलाओं को गावे, उनका वर्णन करे और मेरी ही लीलाओं का अभिनय करे। यह सब करते समय प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगे, मेरी लीला-कथाएँ स्वयं सुने और दूसरों को सुनावे। कुछ समय तक संसार और उसके रगड़ों-झगड़ों को भूलकर मुझमें ही तन्मय हो जाय।

प्राचीन ऋषियों तथा भक्तों द्वारा स्वाभाविक बनाये हुए स्तव-स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करे और प्रार्थना करे कि- हे भगवन्! मुझ पर प्रसन्न होओ। तदनन्तर दण्डवत् प्रणाम करे।

भगवान् के दक्षिण की ओर से दोनों बाहुओं के मध्य मस्तक रखकर अर्थात् दोनों हाथों से बद्धाञ्जलि होकर "हे ईश! इस संसार-सागर में मैं डूब रहा हूँ, मृत्युरूप मगर मेरा पीछा कर रहा है, मैं डरकर आपकी शरण आया हूँ। प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये!" इस प्रकार कातरस्वरमें प्रार्थना करे।

(v) मन्दिर रचना एवं सेवा प्रवाह–

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम्।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान्।
क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्वा मत्सार्ष्टितामियात्॥

भाग.स्कं. 11, अ. 27, श्लोक 50-51

यदि शक्ति हो तो उपासक सुन्दर और सुदृढ़ मन्दिर बनवाये और उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे। सुन्दर-सुन्दर फूलों के बगीचे लगवाये, नित्य की पूजा, पर्वों की यात्रा और बड़े-बड़े उत्सवों की व्यवस्था कर दे।

जिन्होंने 'सुचारु रूप से सेवा चले' ऐसा विचार कर मन्दिर सेवार्थ खेत, दुकान, गाँव, नगर लगाये हैं, उन्हें मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

यह विधिमार्ग से उपासना करने वाले भक्तों के लिए 'पीठ-पूजा' बतलाई गयी। जो कि श्रवण-कीर्तनादि शास्त्र-शासन-भय से करते हैं, उसे वैधी भक्ति कहते हैं। जिसका स्वरूप नवयोगेश्वरों ने बतलाया है–

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

भाग.स्कं. 11, अ. 2, श्लोक 36

शरीर से, वाणी से, मन-इन्द्रियों से, बुद्धि-अहंकार से स्वभावत: जो कुछ कर्म करे, सब श्रीनारायण को अर्पण कर दे, उसे प्रत्यवाय नहीं होगा।

मेरी लीलाओं को गावे, उनका वर्णन करे और मेरी ही लीलाओं का अभिनय करे। यह सब करते समय प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगे, मेरी लीला-कथाएँ स्वयं सुने और दूसरों को सुनावे। कुछ समय तक संसार और उसके रगड़ों-झगड़ों को भूलकर मुझमें ही तन्मय हो जाय।

प्राचीन ऋषियों तथा भक्तों द्वारा स्वाभाविक बनाये हुए स्तव-स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करे और प्रार्थना करे कि- हे भगवन्! मुझ पर प्रसन्न होओ। तदनन्तर दण्डवत् प्रणाम करे।

भगवान् के दक्षिण की ओर से दोनों बाहुओं के मध्य मस्तक रखकर अर्थात् दोनों हाथों से बद्धाञ्जलि होकर "हे ईश! इस संसार-सागर में मैं डूब रहा हूँ, मृत्युरूप मगर मेरा पीछा कर रहा है, मैं डरकर आपकी शरण आया हूँ। प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये!" इस प्रकार कातरस्वरमें प्रार्थना करे।

(v) मन्दिर रचना एवं सेवा प्रवाह—

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम्।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान्।
क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्वा मत्सार्ष्टितामियात्॥

भाग.स्कं. 11, अ. 27, श्लोक 50-51

यदि शक्ति हो तो उपासक सुन्दर और सुदृढ़ मन्दिर बनवाये और उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे। सुन्दर-सुन्दर फूलों के बगीचे लगवाये, नित्य की पूजा, पर्वों की यात्रा और बड़े-बड़े उत्सवों की व्यवस्था कर दे।

जिन्होंने 'सुचारु रूप से सेवा चले' ऐसा विचार कर मन्दिर सेवार्थ खेत, दुकान, गाँव, नगर लगाये हैं, उन्हें मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

यह विधिमार्ग से उपासना करने वाले भक्तों के लिए 'पीठ-पूजा' बतलाई गयी। जो कि श्रवण-कीर्तनादि शास्त्र-शासन-भय से करते हैं, उसे वैधी भक्ति कहते हैं। जिसका स्वरूप नवयोगेश्वरों ने बतलाया है—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

भाग.स्कं. 11, अ. 2, श्लोक 36

शरीर से, वाणी से, मन-इन्द्रियों से, बुद्धि-अहंकार से स्वभावतः जो कुछ कर्म करे, सब श्रीनारायण को अर्पण कर दे, उसे प्रत्यवाय नहीं होगा।

रागानुगा-सेवा विधि—

अब 'रागानुगा मार्ग से उपासना करने वाले भक्तों को 'पीठ-पूजा' बतलाई जाती है। रागानुगा सेवा निजाभिमत व्रजराजनन्दन कृष्ण की लौकिक सद्‌बन्धुभावमय सेवा है। यह माधुर्य-आस्वादन के लोभ से प्रेरित होकर की जाती है। जिसका स्वरूप नवयोगेश्वरों ने इसप्रकार बतलाया है—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययो स्मृति।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥

भाग.स्कं. 11, अ. 2, श्लोक 37

इस जीव को माया-अभिमुख होने से निज स्वरूप की विस्मृति हो गयी थी। यह ईश्वर से विमुख हो गया है, इसे साक्षात् श्रीकृष्णदासता मिले और माधुर्य-आस्वाद प्राप्त हो, अतः श्रीगुरुदेव के चरणाश्रित होकर अपने प्रियतम श्रीहरि का अनन्य-भावसे भजन करे।

इसी से आचार्य-चरण आज्ञा दे रहे हैं—

सेवा-साधक-रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्‌भावलिप्सुनाकार्या व्रजलोकानुसारतः॥

रागवर्त्म चन्द्रिका; श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती

साधक रूप से अर्थात् शरीर से, श्रवण-कीर्तनादि द्वारा एवं सिद्धरूप से अर्थात् अन्तःचिन्तित सेवोपयोगी पार्षदतनु में अभिनिवेश करके व्रजपरिकरों का आनुगत्य ग्रहण करके सेवा करनी होगी।

वह सेवा 'अपरा' और 'परा' दो प्रकार की है—

अपरा वह है— जो कि देह द्वारा की जाती है, जैसे 'श्रवण' 'कीर्तनादि' दैहिकी है। इसे तनुजा एवं वित्तजा भी कहते हैं। 'परा' वह है जो कि मन द्वारा सिद्ध की जाती है। इसे 'मानसी' भी कहते हैं—

कृष्णं स्मरन् जनं चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।

रागवर्त्म-चन्द्रिका- श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती

नित्य परिकर के आनुगत्य पूर्वक धाम, रूप, लीला, परिकर का स्मरण एवं सेवा करना—इसे ही 'रागानुगा' बतलाया है। इसमें स्मरण का प्राधान्य है।

योगपीठ-श्रीवृन्दावन धाम शोभा—

रागानुगा उपासना शास्त्रोक्त ही है। जैसा वाराहसंहिता में कहा है—

यच्च गोलोकयैश्वर्य्यं गोकुले तत्प्रतिष्ठितम्।
तस्मात् त्रैलोक्यमध्ये तु पृथ्वी धन्येति कीर्तिता॥
विष्णुचक्रोपरि श्रीमद्धाम वैष्णवमंडितम्।
सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम्॥
कर्णिका तन्महद्धाम गोविन्दस्थलमव्ययम्।
तत्रोपरि स्वर्णपीठे मणिमण्डपमंडितम्॥
नाना विधि रसक्रीडा नाना लीलामयस्थलम्।
तत्र रासमहापीठं निगमागमदुर्गमम्॥
योगेन्द्रैरपि दुष्पारं सत्यं पुंसामगोचरम्।
श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं पूर्णानन्दरसाश्रयम्॥
भूमिश्चिन्तामणिस्तोयममृतं रसपूरितम्।
वृक्षः सुरद्रुमस्तत्र सुरभिर्वृन्दसेवितम्॥
स्त्री लक्ष्मी पुरुषो विष्णुस्तदंशांशिसमुद्भवः।
तत्र कैशोरवयसं नित्यमानन्दविग्रहम्॥
गीतिर्नाट्यं कथागानं स्मितवक्त्रं निरन्तरम्।
शुद्धसत्त्वैः प्रेमवर्णै वैष्णवैस्तद्घनाश्रितम्॥
पूर्ण ब्रह्मसुखे मग्नं स्फुरन्तन्मूर्तितन्मयम्।
मत्तकोकिल भृङ्गाद्यैः कूजत्कलमनोहरम्॥
कपोत - स्वर - संगीतोन्मत्तालि - सहस्रकम्।
भुजङ्गशत्रुनृत्याढ्यं सकान्ता-मोद-विभ्रमम्॥
नाना वर्णैश्च कुसुमैस्तत्राथ परिपूरितम्।
सुस्निग्ध सौरभा व्याप्त मुग्धीकृत जगत्त्रयम्॥
मन्द-मारुत-संयुक्तं वसंत-ऋतु-सेवितम्।
पूर्णेन्दु नित्याभ्युदयं सूर्य्य-मंदांशु-सेवितम्॥
अदुःखं शोकविच्छेदं जरामरण-वर्जितम्।
अक्रोधं गतमात्सर्य्यमभिन्नं निवहं कृतम्॥
पूर्णानन्दामृतरसं पूर्ण-प्रेम-सुधार्णवम्।
गुणातीतं महद्धाम पूर्णभक्तिस्वरूपकम्॥
यत्र वृक्षादिपुलकैः प्रेमानन्दाश्रु-वर्षिणम्।
गोविन्दाङ्घ्रिरजः स्पर्शान्नित्यवृन्दावनं भुवि॥
यस्य स्पर्शनमात्रेण पृथ्वी धन्या जगत्त्रये।
महाकल्पतरुच्छाये गोविन्दस्थानमव्ययम्॥

मुक्तिस्तत्र रजस्पर्शात्तन्माहात्म्यं किमुच्यते।
कालिन्द्यास्तन्ममहापद्मे कर्णिकायाः प्रदक्षिणम्॥
नालि-निर्मल-गम्भीर-जलं सौरभमोहितम्।
आनन्दामृततन्मिश्रं मकरन्दाखिलोदयम्॥
पद्मोत्पलाद्यैः कुसुमैर्नानारत्नैः समुज्ज्वलम्।
चक्रवाकादिविहगैर्नाना-मच्छकलस्वनैः॥
शोभयन्तं जलं रम्यं तरङ्गादिमनोहरम्।
तस्योभयतटां रम्यां शुद्धकाञ्चननिर्मिताम्॥
गंगा कोटिगुणं प्रोक्तं यत्र स्पर्शो वराटकः।
मध्ये वृन्दावने रम्ये मञ्जु-मन्दार-शोभिते॥

योगपीठ वर्णन (श्रीवृन्दावनधाम शोभा) —

जो कुछ गोलोक में ऐश्वर्य एवं माधुर्य है, वही भौम वृन्दावन में विराजमान है। इसीसे त्रिलोकीमें पृथ्वी-मण्डल धन्य है, जिस पर यह व्रजभूमि विराजमान है।

यह विष्णुचक्र पर विराजमान है, अर्थात् प्रलय-काल में भी नष्ट नहीं होती। श्रीवृन्दावन सहस्रदल कमल की तरह है, अर्थात् प्रकृति के अन्तर्भूत होता हुआ भी माया-रहित है; जैसे कमल जल के ऊपर होता हुआ भी वह जल का स्पर्श नहीं करता। श्रीवृन्दावन सब धामों से ऊपर है। अर्थात् त्रिपाद विभूति से परे है।

जिसकी कर्णिका तेजोमय है जहाँ पर श्रीगोविन्द सदा विराजमान हैं। उस सहस्रदलकमल की सुवर्णमयीभूमि पर शोभायमान 'मणिमण्डप' है जहाँ अनेक प्रकार के रहस्यमय क्रीड़ाओं वाला गोविन्द-स्थल है।

जिसके मध्य 'महारास' पीठ है जिसे कि वेद अतन्निरसन बतलाते हैं; अर्थात् शास्त्र-अगम्य कहते हैं।

योगीन्द्र श्रीशुक-सनकादिकों से जो दुष्पार है, जो नित्य है और जिसे प्राकृत देहधारी नहीं पा सकते, वह वृन्दावनधाम रमणीक है, पूर्ण आनन्द रस का आश्रय है।

जहाँ की भूमि चिन्तामणि-मयी है, जल अमृत है, वृक्ष कल्पतरु हैं, पशु कामधेनु हैं। जहाँ की स्त्रियाँ लक्ष्मी-स्वरूपा हैं, पुरुष भगवद्रूप हैं, जो भगवान् के अंशांश से उत्पन्न हैं। वे आनंद विग्रहरूपा हैं। वहां की अवस्था सर्वदा किशोरवय है। जहाँ का चलना नाचना है। बोलना गाना है। यहाँ की

मन्द स्मिति में सदा बाँकपन है। जहाँका परिकर प्रेममय विशुद्ध सत्त्वगुण-प्रधान है।

जैसे ब्रह्मानुभवी अपने स्वरूप में तन्मय रहते हैं। उसी प्रकार वहाँके व्रजपरिकर प्रिया-प्रियतम के ध्यानमें निमग्न हैं। उस श्रीवृन्दावन धाम में मतवाली कोकिला 'कुहू-कुहू' ध्वनि कर रही है, भौंरे मनोहर गुंजार कर रहे हैं।

जहाँ पर कपोतों का संगीत गायन हो रहा है, मनको मोहनेवाले हजारों भ्रमर एवं पक्षी कल-कल ध्वनि कर रहे हैं। जहाँ पर मत्तमयूर-मयूरियों सहित नृत्य कर रहे हैं।

नाना प्रकार के पुष्पों की सुगन्ध से सारी त्रिलोकी विमुग्ध हो रही है। सुगंध से पूर्ण जहाँ पर धीर समीर बह रही है। जिस श्रीवृन्दावन धाम की सर्वदा वसन्त ऋतु सेवा करती है। (जहाँ पर लीला के किरणों से युक्त है। काल है), जहाँ का चन्द्रमा सर्वदा आह्लादकारी है, सूर्य भी सन्तापहारी है एवं अटूट प्रीति है।

श्रीधाम दु:ख, शोक, जरा और मरण से रहित है। जहाँ के परिकरों में क्रोध, ईर्ष्या, अपना-पराया भाव तथा अभिमान नहीं है।

वह श्रीवृन्दावन परिपूर्ण आनन्दामृत रससे भरा प्रेम-समुद्र है। वह त्रिगुणातीत है, सब धामों में श्रेष्ठ एवं पूर्णभक्ति का स्वरूप है; (अर्थात् जहाँ परा भक्ति महारानी सदा नृत्य करती रहती हैं)।

जहाँके जड़-जाति वृक्षोंमें भी पुलक (रोमांच) एवं प्रेमानन्द की अश्रुधारा बरसती है। श्रीगोविन्ददेव की चरण-रज के स्पर्श से श्रीवृन्दावन-भूमि सर्वदा आनन्दमयी है।

जिस व्रजभूमिके स्पर्श मात्रसे त्रिलोकीमें स्थित यह पृथ्वीमण्डल धन्य है। जहाँ पर महान् कल्पवृक्ष की छाया में "श्रीगोविन्द स्थल" नाम का अव्यय स्थान है।

जिस व्रज-रज के स्पर्श से मुक्ति भी मुक्त हो जाती है, अर्थात् मुक्त भी लीला-विग्रह-धारण करके गोविन्दकी सेवा करते हैं। उस धामकी क्या महिमा वर्णन की जाय? उस सहस्त्रदलाकार वृन्दावन कमल की कर्णिका के चारों ओर कंकणाकार, श्रीकालिंदी जी शोभायमान हैं।

जिसका जल निर्मल कमलकी सौरभ-युक्त, गम्भीर है। मानो आनन्दामृत रस ही धारा-रूप से बह रहा है। उसमें मकरंद मिल रहा है। जिसमें लालकमल, नीलकमल और श्वेतकमल आदि पुष्प शोभित हो रहे हैं एवं जिसकी रज (बालुका) रत्नमयी है, जिस कालिंदी जी में चकवा, चकवी-हंसादि कल्लोल कर रहे हैं, नाना रंगवाले मत्स्य आवाज करते हुए खेल रहे हैं।

वह यमुना जल तरंगों से दोलायमान है। जिस यमुनाके दोनों तट शुद्ध काञ्चनमय हैं।

श्रीयमुनाका तनिकसा स्पर्श श्रीगंगाजी से भी कोटि गुणा अधिक पुण्यदायी है।

योजनावृत तद्वृक्षैः शाखापल्लवमण्डितैः।
तत्राध सिद्धपीठं यत् गोविन्दस्थानमव्ययम्॥
सप्तावरणकं स्थान श्रुतिमृग्यं निरंतरम्।
तत्र शुद्धहेमपीठे मणिमण्डपमण्डितम्॥
तन्मध्ये मंजुलश्रीरत्नयोगपीठं समुज्ज्वलम्।
तदष्टकोण-निर्माणं नानादीप्तं मनोहरम्॥
तत्रोपरि च माणिक्यं स्वर्णसिंहासने स्थितम्।
अष्टदलारुणाम्भोजं तत्रैव सुखनिर्मितम्॥
गोविन्दस्य प्रियस्थानं किमस्य महिमोच्यते।
श्रीगोविन्दस्तु तत्रस्थं वल्लवीवृन्दवल्लभम्॥
दिव्यस्त्रग्वयोरूपं वल्लवीप्रियनन्दनम्।
व्रजेन्द्र-नियतैश्वर्य्यं व्रजरामैकवल्लभम्॥
यौवनोद्भिन्नकैशोरं वयसाकृतविग्रहम्।
सांद्रानन्द परं ज्योतिर्दलिताञ्जनसन्निभम्॥
अनादिमादिं गोविन्दं नन्द-गोप-प्रियात्मजम्।
श्रुतिमृग्यमृजं नित्यं गोपीजन-मनोहरम्॥
परं धाम परं रूपं द्विभुजं गोकुलेश्वरम्।
वृन्दावनेश्वरं ध्यायेन्निर्गुणस्यैककारणम्॥
सूत्राभरत्नवत्-स्वच्छ-श्याम-धाम मनोहरम्।
नवीन-नीरद-श्रेणी सुस्निग्धं मंजु मंजुलम्॥
फुल्लेन्दीवर-सत्कान्ति-सुख-स्पर्श-सुखाश्रयम्।
दलिताञ्जन पुञ्जाभं चिक्कणं श्याम मोहनम्॥
सुस्निग्ध-नील-कुटिलाशेष-सौरभ-कुन्तलम्।
तदूर्द्धदक्षिणे भाले तिर्य्यग्-चूड-मनोहरम्॥

नाना रत्नोज्ज्वलं राजत् शिखण्ड-दल-मंडितम्।
मन्दार-मंजु-सद्गुच्छ-चूडं चारु विभूषितम्॥
क्वचिद्वर्हदल-श्रेणी - मंजु - मुकुट-मंडितम्।
नानाभ्र-मणिमाणिक्य-किरीटं भूषितं क्वचित्॥
लोलालकावृतं राजत् कोटीन्दु-सदृशाननम्।
कस्तूरी तिलकं भ्राजन्मंजु गोरोचनार्चितम्॥
नीलेन्दीवर-सुस्निग्धं सुदीर्घ-दललोचनम्।
उन्नत-भ्रूलता-शेष-स्मित-साची निरीक्षणम्॥
सुचारून्नत-सौन्दर्य्य-नासा हृद्यः निरूपमम्।
नासाग्र-गज-मुक्तांशु मुग्धीकृत-जगत्त्रयम्॥
सिन्दूरारुण-सुस्निग्ध-लोष्ठाधर-मनोहरम्।
नाना-रत्न-लसत्स्वर्ण-मकराकृतकुण्डलम्॥
तद्रश्मि मंजु सद्गण्डं मकरान्तलसद्युतिम्।
कर्णोत्पलं सुमन्दारं कुसुमोत्तंसभूषितम्॥
त्रैलोक्याद्भुत-सौन्दर्य्य-तिर्य्यग्ग्रीवमनोहरम्।
प्रस्फुरन्मंजु-माणिक्य-कम्बु-कण्ठ-विभूषितम्॥
श्रीवत्स-कौस्तुभं वक्षं मुक्ताहार-लसच्छ्रियम्।
कदम्ब-मंजु-मन्दार-कुसुमोद्दामभूषितम्॥
सद्दिव्य-मणि-माणिक्य-शुद्ध-काञ्चनमिश्रितम्।
करे कङ्कण-केयूर-किङ्किणी कटिशोभितम्॥
मंजुमंजीरसौन्दर्यं श्रीमदंघ्रि-विराजितम्।
कर्पूरागुरु-कस्तूरी-विलसच्चन्दनादिकम्॥
गोरोचनादिसंमिश्र-दिव्याङ्गं-रागचित्रितम्।
स्निग्धपीत घटी राजत् प्रपदान्दोलितांचलम्॥
गम्भीर नाभिकमलं लोमराजिलसद्व्रजम्।
सुवृत्तं जानुयुगलं पाद-पद्म-निरूपमम्॥
ध्वज वज्रांकुशाम्भोज करांघ्रितल-शोभितम्।
नखेन्दु-किरण-श्रेणी-पूर्ण-ब्रह्मैक-कारणम्॥
त्रिभङ्ग-ललिताशेष-लावण्यभार-निर्मितम्।
तिर्य्यग्ग्रीव-जितानन्तकोटि-कन्दर्प-सुन्दरम्॥
वामांसार्पित-सद्गण्ड-स्फुरत्काञ्चनकुण्डलम्।
अपाङ्गे क्षण-सुस्मेर-कोटि-मन्मथ-मन्मथम्॥
कुञ्चिताधर विन्यस्त वंशी-मंजु-कलस्वनैः।
जगत्त्रयं मोहयन्तं मग्नं प्रेम-सुखार्णवे॥

रमणीय वृन्दावन के मध्य एक योजन का 'मन्दारवन' सुशोभित है जो कि शाखा पल्लवों से मण्डित है। उसके नीचे "सिद्धपीठ" है। इसे "गोविन्द स्थान" भी कहा जाता है, जो अव्यय है।

"गोविन्द स्थल" के सात आवरण हैं, जिन्हें निरन्तर श्रुति भी ढूँढ़ती हैं। उस शुद्धसत्त्वात्मक सुवर्ण चबूतरे (पीठ) पर "मणिमय मण्डप" है।

प्रथम : कर्णिकामण्डल (श्रीयुगल) —

उसके मध्य मञ्जुल प्रकाशवान् 'श्रीरत्नमय योगपीठ' है, जो कि आठकोण की बनी हुई है एवं मनोहर दैदीप्यमान है।

उसके ऊपर मणि-माणिक्य-खचित सुवर्ण-सिंहासन है उस पर अष्टदल लालकमल का सुखासन है। वह श्रीगोविन्द का प्रिय स्थान है। उसकी क्या महिमा वर्णन की जाय? जिस पर गोपीजन-वल्लभ श्रीगोविन्द विराजमान हैं। श्रीगोविन्दकी दिव्यमाला ऐश्वर्यमय युक्त है। वे किशोरवय युक्त सुन्दर रूप व्रजराज कुमार हैं। वह व्रज गोपियों के प्यारे हैं।

जिनके श्रीअङ्ग से किशोर अवस्था का यौवन उमड़ रहा है। घना दैदीप्यमान मथित अञ्जन जैसा श्याम अङ्ग है। जो कि जगत् सृष्टिके पूर्व विराजमान अनादि हैं। नन्दगोप के प्यारे पुत्र हैं। जिन्हें श्रुति ढूंढ़ती है; सुचिक्कण अङ्ग है नित्य गोपीजनों के मनोहर प्यारे हैं।

जिनका तेज रूप दिव्य है। जो कि दो भुजा वाले हैं गोकुल के ईश्वर हैं प्रकृति से परे एवं उसके कारण हैं, उन वृन्दावनेश्वर का ध्यान करें।

जिनका मरकतमणि सा चमकीला स्वच्छ-श्याम अङ्ग है। जैसे नवीन मेघ को देखकर आनन्द उदय होता है अथवा प्रफुल्लित कमल को देख चित्त आकर्षित होता है।

उसी तरह जिसके नीलकमल जैसे अङ्ग स्पर्श करके परमाह्लाद होता है। जिनका मथे हुए अञ्जन सा श्याम सुचिक्कण मनोहर श्रीअङ्ग है।

श्रीमस्तकपर सुस्निग्ध सुगंधयुत कुटिल अलकावलियाँ हैं। ऊपर दक्षिण भाल की तरफ झुका हुआ मनोहर चूड़ा है।

जिसपर नाना प्रकार के जड़े हुए रत्न हैं, ऐसा मयूरपुच्छ शोभित है।

पाग के पेचों में मन्दार पुष्प के गुच्छ लगे हुए हैं।

कभी घने मयूर पिच्छों का मयूर मुकुट पहना है। कभी श्रीमस्तक पर नाना प्रकार के मणि-माणिक्यों से जड़ा हुआ किरीट शोभा देता है।

छूटी हुई अलकावलियों से आवृत करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्तिवाला आनन सुशोभित है। ललाट पर कस्तूरी-गोरोचन का मञ्जुल तिलक है।

सरस दिव्य नीलकमल की पंखुरी के आकार के दोनों कर्णपर्यन्त विस्तृत नयन हैं। दोनों टेढ़ी भृकुटि धनुषाकार ऊँची हैं एवं चंचल मुस्कान एवं दृष्टि है।

उठी हुई सौन्दर्ययुक्त मनको हरनेवाली निरुपम नासिका है। नासाग्र का गजमुक्ता त्रिजगत् को भी विमोहने वाला है।

सिन्दूरकी कान्तिवाले सुस्निग्ध मनोहर लाल ओष्ठ अधर हैं। नाना प्रकार के जिसमें रत्न जड़े हुए हैं, ऐसे सुवर्ण के मकराकृति कुण्डल हैं।

उन मकराकृति कुण्डलों की मञ्जुल कान्ति से दोनों कपोल झलझला रहे हैं। दोनों कर्णों पर मन्दार-पुष्प के बंधे हुए कमल के दो तुर्रे हैं।

उनकी त्रिलोकी में अद्‌भुत सुन्दरतायुक्त टेढ़ी मनोहर ग्रीवा है। जहां मणि-माणिक्य जिसमें झलक रहे हैं ऐसे भूषणों से भूषित मनोहर त्रिवलीयुक्त कंबु (कण्ठ) है।

श्रीवत्स और कौस्तुभमणि की झलक युक्त मोतीके हारोंसे भरा हुआ बृहत् सुन्दर वक्षःस्थल है। कदम्ब, कुन्द, मंदार पारिजात, कमल आदि पुष्पों से बनी हुई आपादतल-लम्बिनी वनमाला शोभा दे रही है।

श्रीहस्त में श्रेष्ठ मणि-माणिक्य से जड़े हुए स्वर्णके कड़े (कङ्कण) हैं। कटिमें क्षुद्र घण्टिकाओंसे युक्त लटक रही सुवर्णकी कौंधनी शोभा दे रही है।

धीमी-धीमी ध्वनि है जिनमें ऐसे मञ्जुल-सुवर्ण नूपुरों से सुशोभित दोनों सुकोमल श्रीचरणकमल हैं। कपूर, अगुरु, कस्तूरी, गोरोचन एवं चन्दन से मिला हुआ दिव्य अङ्गराग उन श्रीगोविन्दके श्रीअङ्गोंमें चित्रित है। सुचिक्कण पीताम्बर की चुन्नट श्रीचरण के टखनों से झोटा खा रही है।

जिसकी कमल के समान गम्भीर नाभि है; लोम-राजि दक्षिणावर्त शोभा दे रही है; दोनों जंघाएँ कदली-स्तम्भ जैसी हैं एवं चरण कमलके समान हैं।

निरुपम पाद-पद्म में ध्वज-बज्र-अङ्कुश के चिह्न सुशोभित हैं। श्रीहस्त कमल में भी श्रीचक्रादि चिह्न शोभा दे रहे हैं। नखचन्द्रों की कान्ति ब्रह्म की कान्ति को प्रकट कर रही है।

त्रिभंग-ललित लावण्य का सार जिसका श्रीअङ्ग है। ग्रीवा के टेढ़ेपन ने अनन्त करोड़ों कामदेवों की शोभा हर ली है।

कंधे की ओर झुकने से कपोलों पर सुवर्ण के कुण्डलों की झलक पड़ रही है। जिसके अपाङ्ग कटाक्ष तथा मन्द-मन्द हास्य ने करोड़ों कन्दर्पों के मन को मथ दिया है।

जिसके कुञ्चित अधर पर वंशी विराजमान है। ऐसा श्रीकृष्ण का रूप त्रिजगत्को वंशी-ध्वनि से विमोह देता हुआ प्रेम-सुख-समुद्र में सबों को डुबा रहा है।

द्वितीय (मध्य) मण्डल (अष्ट यूथेश्वरियां)—

राधया सह गोविन्दं स्वर्णसिंहासने स्थितम्।
तद्बाह्ये योगपीठे च स्वर्णसिंहासनावृते॥
प्रत्यङ्गरभसा वेशा प्रधानाः कृष्णवल्लभाः।
तन्मुखे ललितादेव्याः श्यामला तच्च वायवे॥

द्वितीय (मध्य) मंडल— (1) प्रधाना, (2) यूथेश्वरीगण—

उत्तरे श्रीमती धन्या ईशान्ये श्रीहरिप्रिया।
विशाखा च तथा पूर्वे शैव्या चाग्रे ततः परम्॥
पद्मां च दक्षिणे भद्रा नैर्ऋते कृष्णसंस्थिता।
योगपीठस्य कोणाग्रे चारुचन्द्रावली प्रिया॥
प्रधाना प्रकृतिश्चाष्टौ प्रधाना कृष्णवल्लभाः।
मनोहरा स्निग्धवेशा किशोरी वयसोज्ज्वलाः॥

तृतीय (मध्य) मण्डल— साधन सिद्धागण—

तद्बाह्ये गृहमध्यस्थ योगपीठावृते शुभे।
सन्मुखे तन्महाधन्या गोपकन्या सहस्त्रशः॥
शुद्ध काञ्चन पुञ्जाभाः सुप्रसन्नाः सुलोचनाः।
कोटि-कन्दर्प-लावण्याः किशोरी वयसान्विताः॥
दिव्यालङ्कारभूषाभिर्नासाग्र-गज-मौक्तिकाः।
विचित्रवेषाभरणाश्चारु-चंचल-कुण्डलाः॥

तद्‌रूप-हृदयारूढास्तदाश्लेष-समुत्सुकाः।
श्यामामृतरसे मग्ना स्फुरत्तद्‌भाव-मानसाः॥
नेत्रोत्पलार्चिते चित्तार्पिता कृष्णपदाम्बुजे।
श्रुतिकन्यास्ततो दक्षे देवकन्याः रसोज्जवलाः॥
तत्पृष्ठे मुनिकन्याश्च सौम्यरूपा मनोहराः।

चतुर्थ (बहिः) मण्डल— (प्रियनर्मसखा) —

मन्दिरस्तुतो बाह्ये प्रियया पार्षदावृते॥
ते समानवयोवेशाः समान-बल-पौरुषाः। समान-रूपाभरणाः समान-गुण-कर्मणाः॥
समान-स्वर-संगीत-वेणु-वादन-तत्पराः। श्रीदामा पश्चिमे द्वारे सुदामा चोत्तरे तथा॥
वसुदामा तथा पूर्वे किङ्क्णी चापि दक्षिणे।

पंचम मण्डल— (सखा) —

तद्वाह्ये स्वर्णपीठे च स्वर्णमन्दिर-आवृते॥
स्वर्णवेद्यांतरस्थे च स्वर्णाभरणभूषिते। स्तोककृष्णांशु भद्राद्यैर्गोपालैरयुतायुतैः॥
शृङ्ग-वेत्र-वेणु-वीणा-वयो-वेशाकृतिस्वरैः।

षष्ठ मंडल— (गोष्ठ) —

तद्वाह्ये सुरभी वृन्दैः सवत्सैः प्रेम-विह्वलैः॥
क्षरत्पयोभिर्गोवृन्दैः लक्षलक्षैरुपावृतम्। चतुर्दिक्षु महोद्यान-मंजु-सौरभ-मोहिते॥
उद्यान-पुष्प-सौरभ्य मुग्धीकृत जगत्त्रये।

सप्तम मंडल (ऐश्वर्य) —

अग्रे सुरगणास्सर्वे सुरेन्द्रैर्विधिशंकरैः॥
यथेप्सितवरं प्रार्थ्य तदंघ्रिभजनोत्सुकाः। तदग्रे वैष्णवास्सर्वे स्फुरत्प्रेमसमाकुलाः॥

अष्टम मंडल (द्वारपाल) —

तद्वाह्ये तु प्रबालोच्चप्राचीरसुमनोहराः। शुक्लं रक्तं तथा श्यामं गौरं च द्वारपालकम्॥
श्रीविष्णो सर्वमंत्राणां कृष्णमन्त्रस्तु कारणम्।
वाञ्छन्ति तत्पदाम्भोजनिश्चलं प्रेमसाधनम्॥
वाराहसंहिता, वृन्दावनरहस्ये, श्लोकः 81 संख्याकार

प्रथम आवरण : श्रीयुगल

वह श्रीगोविन्द राधिकाजी के सहित सुवर्ण-सिंहासन पर विराजमान हैं। उस योगपीठ में सुवर्ण सिंहासन के चारों ओर अङ्ग-प्रत्यङ्ग से सुशोभित

रसावेश में डूबी हुईं कृष्णचन्द्र की प्यारी ललितादिक अष्ट सहचरी अन्त: मंडल में विद्यमान है।

द्वितीय आवरण : यूथेश्वरीगण

तप्त-काञ्चन वर्णाङ्गी, नील वस्त्रावृता, वामा, मधुस्नेहा श्रीकिशोरीजी के सम्मुख प्रखरा शिखिपिच्छ-वसना श्रीललितादेवी हैं। उनके समीप पूर्व दिशा में तारावलिवसना वामा श्रीविशाखा देवी हैं। श्रीयुगल के वायव्यकोण में वाम्य-दाक्षिण्य-युक्ता, प्रखरा, रक्त-वस्त्रा श्रीश्यामलादेवी हैं। जो प्रखरा एवं रक्तवस्त्रा है एवं आग्नेय में सुदेवी है।

उनके समीप वामा मध्या नीलवस्त्रा श्रीचम्पकलता देवी हैं। उनके समीप दक्षिणा-मृद्वी, नीलवस्त्रा श्रीचित्रादेवी हैं उनके समीप दक्षिणा, प्रखरा, शुक्लवस्त्रावृता श्रीतुङ्गविद्यादेवी हैं ये सभी अन्तर्मण्डल में हैं।

मध्यमण्डल में दक्षिणा में चद्रावली है जो घृतस्नेहा है। उनके दक्षिण में पद्मा है जो दक्षिणा-प्रखरा है। पूर्व में शैव्या है, जो दक्षिणामृद्वी है। उत्तर में धन्या एवं पश्चिम में श्यामला है। जो सुहृदपक्षा है। योगपीठ के कोणाग्र में दक्षिणा मृद्वी घृतस्नेहा नीलवस्त्रा श्रीचन्द्रावली देवी हैं। (राधा-ललिता-विशाखा भी मध्यमण्डल में स्वतंत्र यूथेश्वरीके रूपमें विराजमान हैं)।

अन्तर्मण्डल में 'पुरुष' की अष्ट प्रधान प्रकृति की तरह ललितादिक श्रीराधा की सखी रूप में श्रीकृष्ण की आठ प्रधान प्रियनर्मासखी हैं। अर्थात् (श्रीराधा), ललिता, विशाखा, रङ्गदेवी, सुदेवी, चम्पकलता, तुङ्गविद्या, चित्रा, इन्दुलेखा। मध्य मंडल में– श्रीचद्रावली, पद्मा, शैव्या, धन्या, श्यामला, राधा, ललिता एवं सुन्दर वेशवाली विशाखा आठ यूथेश्वरियां है। ये सब परम मनोहरा हैं तथा सर्वदा किशोर-अवस्था वाली हैं ये सभी निजयूथ में प्रधाना हैं अर्थात् इनका अपने यूथकी सखियोंसे परस्पर में मतभेद नहीं है।

इनमें श्रीचन्द्रावली देवी में "मोदन" भाव रहता है; तथा "मादन" महाभाव श्रीराधा में विराजता है। अर्थात् श्रीगोविन्द जिनका दर्शन कर सबको भूल जायें, उन्मत हो जायें, वह 'मादनभाव' कहलाता है। जो श्रीकिशोरी राधिकाजी में ही विराजता है।

तृतीय आवरण : साधनसिद्धा आदि—

मणिमय-मण्डप के मध्यस्थ (कर्णिकाओं) योगपीठ के तृतीय आवरण में श्रीगोविन्ददेव के सन्मुख 'गोपकन्या' धन्यादि कन्यागण-सहस्र हैं। इन सबों की अङ्ग-कान्ति शुद्ध काञ्चन-पुञ्ज के समान है। ये सब सुप्रसन्न, सुदीर्घनयना, करोड़ों कन्दर्पों के लावण्य को हरने वालीं, किशोर-अवस्था वाली हैं, अंगों पर जिनके दिव्य अलङ्कार सुशोभित हैं, नासिका के अग्रभाग में गज-मुक्ता दमक रहे हैं, जिनके विचित्र वेश हैं, विचित्र आभरण हैं, कर्णों में सुन्दर चञ्चल कुण्डल हैं, जिनके हृदय-मन्दिर में श्रीगोविन्द का रूप आरूढ़ है। ये सब आलिङ्गन के लिए सदा उत्सुक रहती हैं, इनका मन श्यामामृत रस में सदा डूबा रहता है। प्रियतम की लीलाएँ इनके मन में सर्वदा उदय होती रहती हैं। ये नेत्र-कमलों से कृष्णपदाम्बुज की पूजा करती रहती हैं।

इसी आवरण में दक्षिण की ओर 'श्रुति-कन्याएँ' हैं बायें "देव-कन्याऐं" हैं, ओर पीछे परम शान्त और मनोहर "मुनि-कन्याएँ" (तथा श्रीरूमञ्जर्य्यादि श्रीगुरुरूपामञ्जरी श्रीगोविन्द की सेवा-निमित्त उपस्थित हैं)।

चतुर्थ आवरण (प्रियनर्म सखा)—

मणिमन्दिर के बाहर चतुर्थ आवरणमें प्रियनर्म सखागण विराजमान हैं। जिनका श्रीकृष्ण के समान वय-वेश-बल-पौरुष है। समान रूप-आभरण है और समान ही गुण-कर्म हैं, उनके समान स्वर हैं अर्थात् वे गानेवाले भी गोविन्द के समान ही हैं। ये सब सर्वदा वंशी बजाते रहते हैं।

इनमें पश्चिम द्वारपर श्रीदामा हैं। उत्तर द्वारपर सुदामा सखा हैं। पूर्व द्वारपर वसुदामा सखा विराजमान हैं। दक्षिण द्वारपर किङ्किणीनामकसखा विराज रहे हैं।

पंचम आवरण (सखा)—

उसके बाहर के आवरण में स्वर्ण-मन्दिर के चारों ओर सुवर्ण-वेदी के नीचे चबूतरे पर सुवर्ण-आभरणों से भूषित तोक, कृष्ण, अंशु, भद्रादि हजारों ग्वारिया सखागण हैं। जिनके महिष-शृङ्ग, वेत्र-वीणादि श्रीकृष्णचन्द्र की तरह ही हैं। सब ग्वालों की अवस्था-शृङ्गार-स्वर-आकृति श्रीगोविन्द की तरह ही है।

षष्ठ आवरण (श्वेत द्वीप) —

सुवर्ण-वेदी के बाहर योगपीठ के षष्ठ आवरण में श्वेत द्वीप (गोष्ठ) है। यहाँ कृष्णप्रेम में आकुल बछड़ाओं के सहित सुरभि-वृन्दों के लक्ष-लक्ष यूथ हैं, जिनके स्तनों से दूध स्रव रहा है। जिनका पद्मगन्धा, सुगन्धादि नाम है। इसी प्रकार और भी मुक्ता, नन्दिनी, चन्दिनी प्रभृति गौ-वृन्दों के यूथ हैं। उस रत्न-वेदी के बाहर चारों ओर बड़ा सुन्दर सौरभ-युक्त पुष्पोद्यान है, जिसकी सुगन्ध ने जगत् को मुग्ध कर रखा है।

सप्तम आवरण (ऐश्वर्य) —

योगपीठ के सप्तम आवरण में आगे इन्द्रादि देवगण श्रीब्रह्मा-शङ्करादि वैष्णवाचार्य स्तुति कर रहे हैं प्रभुकी श्रीचरण-रज-प्राप्ति की लालसा में जिनके श्रीअङ्ग में प्रेमांकुर उदय हो रहे हैं।

अष्टम आवरण (द्वारपाल) —

उस उद्यान के बाहर प्रवालरत्नों से बना अति मनोहर उच्च प्राचीर है जिसके चारों द्वारोंपर-शुक्ल, रक्त, श्याम, और गौर द्वारपाल खड़े हुए हैं।

जितने भी विष्णु-मन्त्र हैं, उनमें कृष्ण-मन्त्र सबका कारण है। उसे ही अन्य सभी मन्त्र श्रीगोविन्दपदाम्भोज में निश्चल प्रेम-प्राप्ति के मुख्य साधन रूपमें चाहते हैं।

शुद्धा भक्ति साधन सार : आनुकूल्येन श्रीकृष्णानुशीलन—

इस प्रकार 'रागानुगा' के "उपास्य तत्त्व" का निरूपण किया गया। रागानुगा वह कृष्ण सेवा है। जिसमें इष्ट वस्तु में अपनी भावानुकूल परमाविष्टता से आनुकूल्यानुशीलन की प्रचुरता हो जाती है।

अब रागानुगा साधनों का वर्णन करते हुए— श्रीभगवान् अपने को पाने के सहज उपाय बतलाते हैं–

हन्त ते कथयिष्यामि ममधर्मान्सुमङ्गलान्।
याश्छ्रद्धया चरन् मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम्॥
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन्।
मय्यर्पित-मनश्चित्तो मद्धर्मात्म-मनोरतिः॥
देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान्।
देवासुर-मनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च॥

पृथक् सत्रेण वा मह्यम् पर्वयात्रा महोत्सवान्।
कारयेद् गीतनृत्याद्यैर्महाराज विभूतिभिः॥

ज्ञान सार : ब्रह्मभाव—

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम्।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः॥
इति सर्वाणि भूतानि सद्भावेन महाद्युतेः।
सभाजयन् मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः॥
ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येकेऽस्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥
नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतो चिरात्।
स्पर्धासूयास्तिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि॥
विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीं।
प्रणमेद्दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डाल गोखरम्॥
यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनः-काय-वृत्तिभिः॥
सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययात्म-मनीषया।
परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्त-संशयः॥
अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्काय-वृत्तिभिः॥

राग भक्तिसार : लौकिक-सद्बन्धुभाव—

न ह्यङ्गोपक्रमेध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि।
मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः॥
यो यो मयि परे धर्मः कल्प्येते निष्फलाय चेत्।
तदायासो निरर्थः स्याद् भयादेरिव सत्तम॥
एषां बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणां। यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥

एकादश स्कं०, अ० २९, श्लोक ८ से २२

(i) वैधी भक्ति सार : चार निष्ठाऐं—

हे उद्धव अब मैं तुम्हें अपने उन मङ्गलमय धर्मों का उपदेश करता हूँ जिनका श्रद्धापूर्वक आचरण करके मनुष्य संसार रूप दुर्जय मृत्यु को अनायास ही जीत लेता है।

मेरे भक्त को चाहिए कि अपने सारे कर्म मेरे लिए ही करे और धीरे-धीरे उनको करते समय मेरे स्मरण का अभ्यास बढ़ाये। कुछ ही दिनों में उसके

मन और चित्त मुझमें समर्पित हो जायेंगे, उनके मन और आत्मा मेरे ही धर्मों में रम जायेंगे। (स्वरूप निष्ठा)—

मेरे भक्त साधुजन जिन पवित्र स्थानों में निवास करते हों उन्हीं में रहें। और देवता, असुर अथवा मनुष्यों में जो मेरे अनन्य भक्त हों उनके आचरणों का अनुसरण करें। (वैष्णव निष्ठा एवं धाम निष्ठा)—

पर्व के अवसरों में सबके साथ मिलकर अथवा अकेला ही नृत्य-गान-वाद्य आदि महाराजोचित ठाट-बाट से मेरी यात्रा आदि के महोत्सव करें। (नाम-सेवा निष्ठा)—

(ii) ज्ञानसार : समभाव एवं सर्वत्र इष्टदर्शन— (ब्रह्मभाव)

अपने विशुद्ध अन्तःकरण में और सर्वत्र बाहर-भीतर व्याप्त आकाश की तरह मुझ परम प्रेमास्पद कृष्ण को सबमें देखें।

हे निर्मलबुद्धिवाले उद्धव! जो साधक इस प्रकार ज्ञानचक्षुसे सम्पूर्ण प्राणियों में महातेजस्वी मुझे देखता है और उन्हें मेरा ही स्वरूप मानकर पूजता है; अर्थात् ब्राह्मण, चाण्डाल, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, चिनगारियों, कृपालु तथा क्रूर में समान दृष्टि रखता है, वही मेरे मत से पण्डित है।

जब निरन्तर सभी नर-नारियों में मेरी ही भावना की जाती है तब थोड़े ही दिनों में साधक के चित्त में स्पर्द्धा (होड़), ईर्ष्या, तिरस्कार और अहङ्कार आदि दोष दूर हो जाते हैं।

यदि अपने ही लोग हँसी करें तो करने दे, उनकी परवाह न करे। मैं अच्छा हूँ वह बुरा है- ऐसी दैहिक दृष्टि और लोक-लज्जा को छोड़ दे। घोड़ा, चाण्डाल, कुत्ते, गधे, गौ प्रभृति में मेरा रूप देखकर सबको पृथ्वी पर साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करें।

जब तक समस्त प्राणियों में मेरी भावना, अर्थात् भगवद्-भावना, न होने लगे तब तक मन-वाणी-शरीर से मेरी (उपकरणों द्वारा) उपासना करता रहे। (सर्वत्र भगवत्भाव सिद्ध हो जाने पर भी स्वरूप सेवा का त्याग नहीं होगा)

इस प्रकार विवेक या प्रेमावेश द्वारा सर्वत्र इष्ट-दृष्टि होने पर उपासना करते-करते कुछ ही दिनों में उस उपासकको इष्ट प्रभुका दर्शन होने लगता है। ऐसी दृष्टि होने पर सारे संशय अपने-आप नष्ट हो जाते हैं। सर्वत्र मेरा साक्षात्कार पाकर सांसारिक दृष्टि का उपराम हो जाता है।

मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठसाधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थों में मन, वाणी और शरीर की समस्त वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाये।

(iii) रागानुगासार : सम्बन्धभाव

हे उद्धव, मेरे भक्ति-धर्म के आरम्भ करने पर यदि किसी भक्ति अङ्ग की कमी भी हो जाय तो वह भक्ति-धर्म नष्ट नहीं होता अर्थात् वह विफल नहीं जाता। क्योंकि भक्ति धर्म तो निष्काम है। और मैंने ही इसे निर्गुण होने के कारण सर्वोत्तम निश्चय किया है। यह साधन काल में भी मधुर है और फलकाल में भी मधुर हैं— जैसे गन्ना का रस। फिर भी मुख्य परिपाक होने पर रसास्वादन विशेष होता है।

हे श्रेष्ठ! यदि ये निष्काम श्रवण कीर्तनादिक भगवद्धर्म कोई भक्त लाभ पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्ति के निमित्त अथवा भय आदि से भी करे, तो भी वह निष्फल नहीं जाते। यदि सभी कर्म भी निष्काम भाव से मुझे समर्पित कर दे, तो वे भी मेरी प्रसन्नता के कारण आरोप सिद्धा भक्ति बन जाते हैं।

बुद्धिमानों की बुद्धि एवं चतुरों की चतुराई की पराकाष्ठा इसी में है कि- यह शरीर तो विनाश शील फूटी कौड़ी की तरह अल्पमूल्य है परन्तु यदि इसी शरीर से मेरी भक्ति की जावे तो भक्तों के सभी मनोरथों की पूर्ति करने वाली हो जावेगी। जो इससे चिन्तामणि के समान मुझ कृष्ण को प्राप्त कर लें अर्थात् खरीद लें वही चतुर-शिरोमणि हैं।

इस प्रकार भगवान् ने तीन श्लोकों में वैधी (कर्ममिश्रा) भक्ति का सार, आठ श्लोकों में ज्ञान मिश्रा भक्ति का सार पुनः तीन श्लोकों में उत्तमा भक्ति का सार बतलाया है। (रागभक्ति का सार श्रीकृष्ण के साथ लौकिक-सद्बन्धु-सम्बन्ध है।

कर्म-ज्ञान-भक्ति साधनों में भक्ति की प्रधानता—

वास्तव में भक्ति-मार्ग के समान सरल एवं प्रधान रास्ता दूसरा नहीं है। भगवान् ने उद्धवजी को बतलाया है-

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित्॥
निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्॥

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्यसिद्धिदः॥

भागवत स्कं० ११, अ० २०, श्लोक ६ से ८

जीवमात्र के कल्याण-निमित्त कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड उपासना-काण्ड जानने के निमित्त अधिकार-भेद से मैंने जगत् में कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग- ये तीन रास्ते बतलाये। इन मार्गों से परे और चौथा मार्ग नहीं है।

जो उपासक इहलोक के कर्मों से अर्थात् लाभ, पूजा, प्रतिष्ठादि फलों से विरक्त हो चुके हैं और उनमें पारलौकिक स्वर्गादि सुखों की भी इच्छा नष्ट हो गयी है, अर्थात् जिन्होंने दोनों सुखों की आकांक्षा सम्यक् त्याग दी है, वे संन्यासी हैं। उन्हें ज्ञान-मार्ग से मुक्ति-लाभ करनी चाहिये। क्योंकि कहा है- "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिल सकती।

अभी जिनकी विषयों में आसक्ति है जो यह चाहते हैं कि हमें सुख की उपलब्धि हो और दुःख-निवृत्ति हो, जिनके चित्त में कर्मों और उनके फलों में वैराग्य नहीं हुआ है, लोग यज्ञादि कर्मों को करके स्वर्गादि सुखों को चाहते हैं। वे कर्मी हैं। इन उपासकों को कर्ममार्ग से मुक्ति-लाभ करनी चाहिए। क्योंकि- "भुक्तिर्यज्ञादि पुण्यतः।" (अर्थात्, भोग यज्ञादिक पुण्यों से ही मिलते हैं।)

परन्तु जो साधक न तो संसार में अत्यन्त आसक्त हैं, और न विरक्त ही हैं। उस उपासक को भक्ति-मार्ग सिद्धि देने वाला है। यदि कोई यह विचार रखे कि– संसार नाशवान् है, फिरभी व्यवहार में कृपणता नहीं करनी चाहिए। उनमें विश्वास जागृत हो गया है कि– ईश्वर सबका अन्तर्यामी है अतः किसी को मत सताओ। ऐसे लोगों को किसी भगवत्-कृपापात्र, परम-स्वतन्त्र, भगवद्भक्त का कृपाजात सत्सङ्ग प्राप्त होजाता है। जिससे यदृच्छया (कृपा) से सौभाग्यवश मेरी लीलाकथा आदि में उनकी श्रद्धा उत्पन्न होती है। वे धन्य होजाते हैं।

ऐसी भक्ति बिना दैन्य के उदय नहीं होगी; इसी से कहा है कि-

सेयं साधनसाहस्रैः हरिभक्तिस्सुदुर्लभाः।

(साधन-साहस्र के अभिमान से हरि-भक्ति का उदय होना दुर्लभ है।) जब साधक दीन होकर हरि के या गुरु के चरणों का आश्रय लेगा तभी उसे भक्तियोग के द्वारा ही सिद्धि मिल सकेगी।

कलियुगमें अधिकार-सम्पत्ति—

अब निरपेक्ष होकर यदि विचार किया जाये तो इस कलिकाल में ज्ञान का अधिकारी कोई जीव नहीं बन सकता, क्योंकि इस युग में त्याग सम्यक् प्रकार से हो ही नहीं सकता। इसी से- अश्वमेध, गोमेध, मांस-श्राद्ध, नियोग एवं "संन्यास" को "कलौ पञ्च विवर्जयेत्" कहा है। इसी प्रकार कर्मी भी बनना इस कलि काल में दुर्लभ है, क्योंकि पहले मन्त्र-शुद्धि होनी चाहिये, फिर वस्तु-शुद्धि (देश-काल-पात्रकी विशुद्धि), जो कठिन है। किसी ने कहा है-

जिह्वा दग्धा परान्नेन हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनो दग्धं परस्त्रीभिर्मन्त्रशुद्धिःकथं भवेत्॥

"हम साधकों की जीभ परान्न खाने से जल गयी, हाथ दान लेते-लेते दग्ध हो गये। अर्थात् आशीर्वाद देने की शक्ति भी तिरोहित हो गयी। मन परस्त्री के सौन्दर्य-दर्शन में जल गया, यानी 'विचार-शक्ति' लुप्त हो गयी। अब बतलाइये, 'मंत्र' एवं "कर्म" किस प्रकार सिद्ध हों?"

इससे इस कलि काल में भक्ति-मार्ग ही सिद्धि दे सकता है। हम संसार की गति देख जान सकते हैं कि— असद् वस्तु में आसक्ति करना दुःख को खरीदना है। किन्तु भगवत्-माया ऐसी विचित्र है कि पुत्र प्रभृति वस्तुओं का त्याग भी हमसे नहीं होता। अतः सब वस्तुओं को (अर्थात्-दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्।) स्त्री, पुत्र, घर, द्वार, प्राणों को श्रीप्रभु को अर्पित कर दें, इसी को भक्ति कहा है- 'भक्ति अस्य भजनम्।'

श्रीमद्भागवत-धर्म— (रहस्य) निरूपण) : चतुःश्लोकी—

यह भक्ति-मार्ग केवल कलिकाल का ही मुख्य धर्म नहीं है, बल्कि सभी कालों में था। वह तो यह 'जैव-धर्म' है जो अनादिकाल से चला आ रहा है। श्रीभगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में ही चतुर्मुख ब्रह्मा को चतुश्लोकी रूप से इसी 'भागवतधर्म' का उपदेश दिया था—

ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥
अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥
श्रीमद्भागवत स्कं २, अ० ९, श्लोक ३० से ३५

मुझ भगवान् का 'परम-गुह्य-ज्ञान' ब्रह्म-ज्ञान से भी रहस्यतम, जो कि अनुभव-साध्य है, उसे मेरी कृपा द्वारा तुम ग्रहण करो। और परम रहस्य प्रेमा-भक्ति तथा उसके अङ्ग भी मेरे द्वारा ग्रहण करो।

मैं नराकृति परब्रह्म रूप में सर्वदा विराजमान हूँ, मेरी जैसी सत्ता है, मेरा कर्म है, उन्हें तुम जाने। मेरा श्यामसुन्दर रूप, मेरे भक्तवात्सल्यादि एवं गुण, मेरे गोवर्द्धन-धारणादि कर्म, वे मेरी कृपा से तुम्हें अनुभव होंगे।

(i) अब ज्ञानतत्त्व बताते हैं—

जगत् के पूर्व मैं ही था, जगत् के पश्चात् भी मैं ही शेष रहता हूँ। अर्थात् मुझसे रहित स्थूल-सूक्ष्म जगत् कुछ भी वस्तु नहीं है।

यहाँ पर 'अहं' शब्द की त्रिआवृत्ति द्वारा वक्ता भगवान् अपने आपको 'मूर्तब्रह्म' ही बतलाते हैं, न कि निर्विशेष ब्रह्म। क्योंकि वह अमूर्त ब्रह्म तो किसी ज्ञान का विषय हो ही नहीं सकता। इसी से श्रुति कहती है कि- "एको नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानः। (सबसे पूर्व एक नारायण ही थे, न ब्रह्मा, न शङ्कर।)

(ii) अब विज्ञान-तत्त्व बताते हैं—

मैं परमपुरुषार्थभूत मेरी ही शक्ति माया द्वारा जगत् की स्वतंत्र प्रतीति होती है। परन्तु माया द्वारा मेरे स्वरूप के अनुभव की स्वतः-प्रतीति होना कठिन है। इस 'माया' नामक शक्ति को मुझ परमेश्वर की जीव-प्रतारणा-शक्ति जानिये— जैसे प्रतिबिम्ब (विक्षेप) और अन्धकार (आवरण)।

(iii) अब रहस्य बताते हैं—

जैसे पञ्चमहाभूत सबमें मिले हुए भी हैं और पृथक् भी हैं, उसी प्रकार लोकातीत वैकुण्ठ में विराजमान होता हुआ भी मैं शरणागतों के हृदय में भी

विराजमान हुआ अनुभव में आता हूँ। इससे प्रेमाभक्ति का 'रहस्य-रूप' सूचित किया गया। अब **अभिधेय** बताते हैं– एक तत्त्व-जिज्ञासु को सबके आत्मारूप मुझ भगवान् की प्रेमरूप रहस्य-भक्ति की आकांक्षा चाहते हुए श्रीगुरुचरणों के सान्निध्य में इसी भक्ति-मार्ग की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, इस भक्ति में विधि-निषेध द्वारा सर्वत्र, सभी को सर्वकाल में, सर्व अवस्था में अधिकार है।

वैष्णवावधान–

अन्त में श्रीभागवती संहिता हमें आदेश देती हैं कि-

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

सत्ययुग में 'ध्यान-प्रधान' भक्ति है; प्रह्लाद ने इसका आश्रय लिया। त्रेता में 'यजन-प्रधान' भक्ति है– श्रीअम्बरीष ने इसका आश्रय लिया। द्वापर में 'पूजा-प्रधान' भक्ति है– श्रीनारद ने पंचरात्र में इसे दिखलाया। कलियुग में 'कीर्त्तन-प्रधान' भक्ति है– अनेकों वैष्णवाचार्यों ने प्रकट होकर इसका प्रचार किया। मुख्य रूप से कलियुग पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्यदेव ने नाम धर्म का प्रचार किया। गर्भकाल में श्रीनारद से प्रह्लाद ने भक्ति प्राप्त की, बाल्यावस्था में श्रीध्रुव ने, यौवन में गय प्रभृति राजाओं ने, वृद्धावस्था में श्रीधृतराष्ट्र ने, मरणावस्था में अजामिल ने, सिद्धावस्था में चित्रकेतु ने कृष्णभक्ति प्राप्त की थी। देखिये श्रीभागवती संहिता में ये सभी लोग कहते हैं–

ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात्स्मृतिः –(प्रह्लाद वचन)
सवै मनः कृष्ण पदारविन्दयोः –(अम्बरीष वचन)
नामान्यन्यनन्तस्य हतः त्रपं पठन् –(नारद वचन)
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः –(वसुदेव प्रति नारद वचन)
पदं त्रिभुवनोत्कृष्टे जिगीषो साधुवर्त्म ये –(ध्रुव वचन)
जहौ युवैव मलवत् उत्तमश्लोक-लालसः –(श्रीशुक वचन गय राजाओं के प्रसंग में)
सद्यो विमुक्तो भगवन्नामगृह्णन् –(अजामिल के प्रसंग)
गाययन् हरिमीश्वरं –(श्रीशुक वचन चित्रकेतु के प्रति)

अतः श्रीभागवत माहात्म्य में श्रीगोकर्ण पिताश्री को यही उपदेश देते हैं कि–

देहेऽस्थिमांस-रुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं, वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्, सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा, सेवाकथारसमहो नितरां पिव त्वम्।
भाग० महा०, अ० ४, श्लोक ७९ से ८०

हे पिता! आप अस्थि चर्म मांस रुधिर से भरे हुए इस देह से अहं बुद्धि को त्याग दो। अर्थात् 'यह मैं और यह मेरा है' इस अज्ञानमयी भावना को दूर करो। स्त्री पुत्रादिकोंमें ममता त्याग दो। सर्वदा यह जगत् क्षणभंगुर है यह विचार चित्त में रखो। संसार से आसक्ति का त्याग करो। रसमयी भावना द्वारा भक्तिमार्ग में अग्रगामी होकर भागवतधर्म में विश्वास रखो कि– प्रभु सर्व समर्थ हैं। वह अवश्य कृपा करेंगे।

निरन्तर भक्ति धर्मका सेवन करो एवं लोकैषणा का त्याग करो। भगवत् भक्तोंकी सेवा करो। अर्थात् उनकी आज्ञा में चलो। कामादि तृष्णाओं को त्याग दो। अन्य लोगों के गुणदोषों का चिन्तन त्यागकर सेवामृत, कथामृत रसका निरन्तर पान करो। तुम्हारी अहं भावना, विपरीत भावनायें सब आप ही आप दूर हो जायेंगी।

इन हरि श्रीगुरु की कथा से सन्तों की आज्ञा पर आरूढ़ होकर यदि साधक चलेगा तो वह उन गोविन्द–पदारविन्द की प्राप्ति का अधिकारी अवश्य होगा। जिनके चरणों में एवं रास्ते में ही मुक्ति पड़ी मिल जाती है। ऐसी प्रेमलक्षणा भक्ति की प्राप्ति अवश्य हो जावेगी।

इसीलिये हमारे वैष्णवाचार्य ने यह उपदेशामृत (सम्प्रदाय) रूपी नौका हम कलिहत जीवों के लिये रख दी है। हमें इसका उपयोग करना चाहिए। इस विषय में श्रीदेवगणों ने श्रीकृष्ण भगवान् के जन्मकाल में गर्भस्तुति में कहा है कि–

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान्।
भाग स्कं० १० अध्याय २ श्लोक ३१

हे परम प्रकाशस्वरूप! भगवन्! आपके भक्तजन इस जगत् के सच्चे निष्कपट हितैषी हैं। वे स्वयं तो इस भयंकर संसारसमुद्र से पार हो ही गये, परन्तु वे इस सम्प्रदायरूपी नौका औरों के लिये पार होने को रख गये, जिससे श्रीचरण कमल का आश्रय ग्रहण कर आगे भी साधक अनायास में पार हो जावेंगे।

जगत् में देखा जाता है कि नौका में चढ़ने वाला स्वयं पार होता है परन्तु नौका को अन्यों के संतरण के निमित्त उसी नदी में छोड़ जाता है, साथ नहीं ले जाता अतः श्रीशुकदेव आचार्य ने आज्ञा दी है कि–

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो र्नान्यत् प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य।

भाग० स्कं० १२ अ० ४, श्लोक० ४०

अति दुस्तर संसार–समुद्र को पार लगाने वाली श्रीपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाकथा रूपी नौका के सिवाय और कोई भी संसार सन्तरण का दूसरा उपाय नहीं है। जो लोग अनेकों प्रकार के दुःखरूपी दावानल से दग्ध हो रहे हैं, वे केवल लीलारस रसायन का सेवन कर भगवत् प्रेमफल प्राप्ति के मनोरथ को सिद्ध कर सकते हैं।

अन्त में श्रीसूतजी उपसंहार करते हुए आज्ञा देते हैं कि–

रस–प्रवाह–संस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा।
कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत्॥
इति च परमं–गुह्यं सर्वसिद्धान्त सिद्धं।
सपदि निगदितं ते शास्त्र पुञ्जं विलोक्य॥
जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित्।
पिव परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम्॥

श्रीमद्भागवत माहात्म्य अ० ६ श्लोक (१०१)–१०३

भगवान् श्रीशुकदेव ने साधकजगत् के लिए जिस भक्तिरस की विवेचना श्रीमद्भागवती संहिता में की, ऐसे उपदेशरत्न को जिसने श्रीकण्ठ में भूषणरूप में स्वयं धारण किया, वह भक्त श्रीभगवान् का अवश्य प्यारा होगा।

जो प्रभु ने भागवत शास्त्र द्वारा यह आज्ञाऐं दी हैं। उसे "वैष्णवावधान" में संकलन किया गया है। यह परम गुह्य–उपदेश हैं। सभी वैष्णवशास्त्रों के सिद्धान्त से प्रमाणित सिद्ध भी है। उसे वैष्णवोपयोगी सब शास्त्रों का सार जान कर यहाँ आप सब वैष्णवों के लिये संकलित किया गया है।

जगत् में श्रीमद्भागवत शास्त्र के समान अंतःकरण को निर्मल बनाने वाला अन्य उपदेश नहीं है। अतः हे भावुकभक्तो! परम सुखमय प्रेमरूपी पंचम–पुरुषार्थ को देने वाला यह बारह स्कंधों के सार उपदेशामृत "वैष्णवावधान" का बारम्बार पान करो।

• • •

इसी से हमारे वैष्णवाचार्यों ने इसे ही परम प्रमाणभूत कहा है—

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासनाब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहो नापरः।

हमारे यहाँ आराधनीय पदार्थ श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। उनका निवास-स्थान श्रीवृन्दावन निकुञ्ज-मन्दिर ही है। परम रमणीक उपासना श्रीगोविन्द की नित्य प्रेयसी व्रजगोपियों द्वारा अनुभव की गयी शृङ्गाररस-प्रधान उपासना है। इसमें श्रीमद्भागवतपुराण प्रधान प्रमाण है। इसी श्रीचैतन्यमत की विवेचना का प्रस्तुत "वैष्णवावधान" निरूपण कर रहा है।

श्रीवल्लभ सम्प्रदाय भी इसी 'भावमयी' उपासना की पुष्टि करता है कि-

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः।

सभी वैष्णवों में हमारे यहाँ सदा सर्वप्रकार से ब्रजेन्द्रनन्दन की भावमयी आराधना ही अभीष्ट है। उन्हें ही भजिये। कहा भी है कि—

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि ब्रह्म सूत्रं तथैव च
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।

वेद, श्रीगीता, ब्रह्मसूत्र एवं समाधिभाषा श्रीमद्भागवत ही मुख्य प्रमाण है।

श्रीनिम्बार्काचार्य भी यही उपास्य बतलाते हैं कि-

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा

श्रीरामानुजमतानुगामी भी श्रीगोदाम्बा, श्रीरङ्गम्, पर्यायवाची संज्ञा से श्रीप्रिया-प्रियतम को ही उपास्य बतलाते हैं।

निष्कर्षतः सारे वैष्णवमत 'भेद वाद' (सेव्य-सेवक भाव) पर ही टिके हुए हैं।

अतः श्रीमद्भागवत महापुराण हमें यही 'अवधान' आज्ञा देता है कि-

तमेव नित्यं शृणुयादभीष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिरभीप्समानः।

इति शमम्

